卐 ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः 卐

१ विश्व कर्त्तृत्व मीमांसा

२ जगत् कर्त्तृत्व मीमांसा

कर्त्ता :

卐 आचार्य विजय सुशील सूरि 卐

श्रीनेमि-लावण्य-दक्ष-सुशील ग्रन्थमाला रत्न ९१-९२ वाँ

विश्वकर्त्तृत्व-मीमांसा

तथा

जगत्कर्त्तृत्व-मीमांसा

[संस्कृतभाषायां–हिन्दीभाषायां च]

कर्त्ता

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपोगच्छाधिपति-श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेकतीर्थोद्धारक - परमपूज्याचार्य-महाराजाधिराज **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वराणां** दिव्यपट्टालंकार - साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्न - परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद्-विजयलावण्यसूरीश्वराणां** प्रधानपट्टधर-संयमसम्राट्-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर–व्याकरणरत्न-परमपूज्याचार्यवर्य **श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां** सुप्रसिद्धपट्टधर-जैनधर्मदिवाकर - राजस्थानदीपक - मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-प्रतिष्ठाशिरोमणि

पूज्याचार्य श्रीमद्विजयसुशीलसूरिः ।

卐 सम्पादक 卐

जिनशासनशणगार-तीर्थप्रभावक-नूतन श्रीअष्टापदजैनतीर्थ संस्थापक-परमपूज्य आचार्यदेव **श्रीमद्-विजयसुशील सूरीश्वरजी महाराज सा.** के विद्वान् शिष्यरत्न-सुमधुर-प्रवचनकार-कार्यदक्ष **पूज्य पंन्यास-प्रवर श्रीजिनोत्तमविजयजी गणिवर्य महाराज**

❀ सत्प्रेरक ❀

स्वर्गीय निःस्पृह तपस्वी पूज्य उपाध्यायप्रवर **श्री चन्दनविजयजी म. सा.** के शिष्यरत्न भक्तिपरायण-कुमारश्रमण **पूज्य मुनिराजश्री रत्नशेखरविजयजी महाराज** तथा विद्वान् पूज्य पंन्यासप्रवरश्री जिनोत्तम विजयजी म. सा. के ज्ञानाभ्यासी-तपस्वी-शिष्यरत्न **पूज्य मुनिराज श्री रविचन्द्रविजयजी महाराज ।**

श्रीवीर संवत् २५२२, विक्रम संवत् २०५२, नेमि संवत् ४७

प्रतियाँ—१००० प्रथमावृत्ति मूल्य १ रु. ५० पैसे

❀ प्रकाशक ❀

श्री सुशील साहित्य प्रकाशन समिति

राईका बाग, जोधपुर-राजस्थान (मारवाड़)

❀ मुद्रक ❀

ताज प्रिण्टर्स, जोधपुर ☎ 21435, 21853

प्रकाशकीय निवेदन

'विश्वकर्तृ त्व-मीमांसा' और **'जगत्कर्तृ त्व-मीमांसा'** ये दोनों लघुग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हमें अतीव आनन्द की अनुभूति हो रही है। इन दोनों लघुग्रन्थों के कर्त्ता परमपूज्य शासनसम्राट् समुदाय के सुप्रसिद्ध जैनधर्म-दिवाकर, जिनशासनशणगार, तीर्थप्रभावक, नूतन श्रीअष्टापद जैनतीर्थ संस्थापक, राजस्थानदीपक, मरुधर-देशोद्धारक, प्रतिष्ठाशिरोमणि पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजयसुशील सूरीश्वरजी म. सा.** हैं।

आपने **'प्रायश्चित्त ज्ञानमञ्जरी'** तथा **'प्रायश्चित्त मुक्तावली'** इन दोनों लघु ग्रन्थों की रचना करने के बाद, प्रस्तुत दोनों लघु ग्रन्थों की सुन्दर रचना की है। 'विश्वकर्तृ त्ववाद' सारे विश्व में व्यापक है। विविध दर्शनशास्त्रों में भी इसी का वर्णन विशेष रूप में आता है।

स्याद्वाद-अनेकान्तवाद के सिद्धान्त से तर्क-युक्ति और दृष्टान्त पूर्वक इन दोनों लघुग्रन्थों में सत्य वस्तु का निदर्शन

करते हुए कर्त्ता ने लिखा है कि–'**विश्व अनादि एवं अनंत-कालीन है**' न इसका कोई कर्त्ता, न इसका कोई पालक, और न इसका कोई विनाशक है। युक्तिपूर्वक यही तथ्य इसमें सिद्ध किया गया है।

इन लघुकृतियों का सम्पादन कार्य **परम पूज्य आचार्य म. सा.** के विद्वान् शिष्यरत्न-लेखपटु-सुमधुरप्रवचनकार **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री जिनोत्तमविजयजी गणिवर्य म. सा.** ने अतिसुन्दर किया है। प्रस्तावना **पण्डितप्रवर श्री शम्भुदयालजी पाण्डेय** (एम.ए., बी.एड.) ने अतिरम्य लिखी है। ग्रन्थ के स्वच्छ, शुद्ध एवं निर्दोष प्रकाशन का कार्य **डॉ. चेतनप्रकाशजी पाटनी** की देखरेख में सम्पन्न हुआ है।

परमपूज्य गुरुदेव आचार्य म. सा. के सदुपदेश से इस ग्रन्थ-प्रकाशन में द्रव्य-सहायक का लाभ लेने वाले सिरोही-निवासी समाजरत्न श्री मनोजकुमार बाबूमलजी हरण की सत्प्रेरणा से श्री जैन श्वेताम्बर संघ, गांधी नगर बैंगलोर हैं।

इन सभी का हम हार्दिक आभार मानते हैं। □

भूमिका

भारतीय मनीषा, तत्त्वार्थों के विमर्श के लिए, सत्य की खोज के लिए अनादि काल से तत्पर रही है। हमें गौरव की अनुभूति होती है कि तत्त्वचिन्तन से षड्दर्शन भारत-भूमि पर ही प्रगट हुए हैं। यद्यपि छह दर्शनों के चिन्तन में पर्याप्त भिन्नता है, अन्तर्विरोध हैं तथापि किसी न किसी तटस्थ दृष्टि से, स्याद्वाद दृष्टि से देखने पर समस्त-दर्शनों का चिन्तन कोटि-पूरक प्रतीत होता है। इनकी विभिन्नता के कारण भारतीय चिन्तन को एक नई दिशा प्राप्त होती रहती है तथा भविष्य में भी प्राप्त होती रहेगी। उक्त चिन्तन-पद्धति के विकसित सोपानों का आश्रयण करके जैनधर्मदिवाकर आचार्यप्रवर श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. ने 'विश्वकर्तृत्व-मीमांसा' की महनीय रचना की है। हिन्दी भाषा में 'जगत्कर्तृत्व-मीमांसा' भी सरल एवम् उत्कृष्ट रीति से प्रस्तुत की है। गुजराती भाषी होते हुए भी हिन्दी-वाङ्मय के विकास में आपश्री का सम्प्रति महनीय योगदान है।

भारतीय दर्शन में मीमांसा, सांख्य, जैन, बौद्ध, योग एवं चार्वाक ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता स्वीकार नहीं करते। वेदान्त, न्याय, वैशेषिक दर्शनों में ईश्वर को जगत्कर्त्ता स्वीकार किया गया है।

सांख्य दर्शन के इतिहास को प्रधान तीन युगों में विभाजित किया जाता है। (क) मौलिक अर्थात् उपनिषद् भगवद् गीता, महाभारत और पुराणों का सांख्य दर्शन ईश्वरवादी था। (ख) महाभारत के बाद का सांख्य अनीश्वरवादी था क्योंकि तदुपरान्त सांख्यकारिका एवं बादरायण के 'प्रकृतिवाद' से प्रभावित सांख्य दर्शन का अवतार हुआ। (ग) ईसा की सोलहवीं शताब्दी का सांख्य दर्शन विज्ञानभिक्षु के अधिपतित्व में पुनः ईश्वर कर्तृत्ववाद से अनुप्राणित हो गया।

योगदर्शन को सेश्वर सांख्य भी कहते हैं। इस मत में ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता न मानकर एक पुरुषविशेष को ईश्वर माना गया है जो सदा क्लेश, कर्म, कर्मफलों और वासनाओं से अस्पृष्ट रहता है। वेदान्त के अनुसार जगत् का निमित्त और उपादान कारण ईश्वर है; जबकि न्याय वैशेषिकों के अनुसार सृष्टि में ईश्वर केवल निमित्त कारण है। इसके अलावा वेदान्त मत में अनुमान से ईश्वर की सिद्धि न मानकर जन्म, स्थिति, प्रलय तथा वेदशास्त्रों का कारण होने से ईश्वर की सिद्धि मानी गई है।

गार्बे (Garbe) आदि पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार न्यायसूत्र और न्यायभाष्य में ईश्वरवाद का प्रतिपादन नहीं किया गया है। यहाँ ईश्वर को केवल द्रष्टा, ज्ञाता,

सर्वज्ञ, सर्वशक्तिशाली स्वीकार किया गया है सृष्टि का कर्त्ता नहीं, परन्तु यह बात ठीक नहीं है क्योंकि न्यायभाष्य में कहा है–

'यथा पिताऽपत्यानां तथा पितृभूतईश्वरो भूतानाम्'

कुछ विद्वानों का मत है कि वैशेषिक सूत्रों में ईश्वर के विषय का कोई उल्लेख नहीं मिलता। परमाणु और आत्मा की क्रिया अदृष्ट के द्वारा सम्पादित की जाती है। अतः मौलिक वैशेषिक दर्शन अनीश्वरवादी था। अथैली (Athalye) आदि विद्वान् इस मत का विरोध करते हैं। उनका कहना है कि वैशेषिक दर्शन कभी भी अनीश्वरवादी नहीं रहा। वैशेषिक सूत्रों का ईश्वर के विषय में मौन रहने का यही कारण है कि वैशेषिक दर्शन का मुख्य ध्येय आत्मा और सउकी विशेषताओं की प्ररूपणा करना रहा है। प्रोफेसर राधाकृष्णन ने भी इस विषय में अपनी पुस्तक Indian Philosophy, Vol II पृ. 225 पर विमर्श किया है।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र महाराज ने **अन्ययोगव्यवच्छेदिका** में ईश्वर के जगत् कर्त्तृत्व के विषय में वैशेषिकों के मत में दूषण प्रदर्शित करते हुए कहा है–

कर्त्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैकः,
स सर्वग स स्ववशः स नित्यः।
इमाः कुहेवाकविडम्बनाः स्युः,
तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥

श्रीमद् विजयसुशील सूरीश्वरजी द्वारा संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में की गई रचना अत्यन्त सारगर्भित है। विषय को स्पष्ट करने की स्वाभाविक क्षमता, भाषा एवं भावाभिव्यक्ति पर समान नियन्त्रण, अनसुलझी उलझी बातों को सरल एवं सरस रीति से प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता आचार्यश्री की स्वगत विशेषता है।

मैंने 'विश्वकर्तृत्व-मीमांसा' एवं 'जगत्कर्तृत्व-मीमांसा' को आद्योपान्त देखकर यह निष्कर्ष निकाला है कि आचार्यश्री संक्षिप्त रूप में सारतत्त्व को प्रगट करने में सिद्धहस्त हैं। विवेचन शैली में भी कहीं-कहीं सूत्रात्मक शैली दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत की सरलता के सन्दर्भ में भी आपश्री बद्धपरिकर परिलक्षित हुए हैं। आशा है कि प्रस्तुत रचनाद्वयी जिज्ञासुजनों का मार्गदर्शन करने में सफल सिद्ध होगी।

आचार्यश्री अपनी अन्य महनीय कृतियों के द्वारा भी संस्कृत, हिन्दी वाङ्मय को समृद्ध करते हुए निरामय एवं चिरायु हों—इसी मंगल मनीषा के साथ—

स्थल :
10/430, नन्दनवन,
जोधपुर-342 008

विदुषां वशंवदः :
शम्भुदयाल पाण्डेय
व्याख्याता-संस्कृत

सुकृत के सहयोगी

शासनसम्राट् परम पूज्य आचार्य महाराजाधिराज **श्रीमद् विजय नेमि-लावण्य-दक्ष सूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टधर प्रतिष्ठाशिरोमणि **प. पू. आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म.सा.** के आज्ञांकित-समाजरत्न-जिनशासनप्रेमी-परमगुरुभक्त श्रेष्ठिवर्य

श्री मनोजकुमार बाबूमलजी हरण

सिरोही (राज.) की सत्प्रेरणा से

श्री जैन श्वेताम्बर मूर्त्तिपूजक संघ

(गांधीनगर जैन मन्दिर)

४ मेन रोड, **गांधीनगर, बैंगलोर**

की तरफ से सुन्दर आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। हम **संघ** एवं **प्रमुख श्री रविलाल लवजीभाई पारेख** आदि सभी **कार्यकर्त्ताओं** के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

ट्रस्टीगण

श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर

卐 वन्दन हो गुरु-चरणे 卐

शासन के साम्राज्य में, तपे सूर्य सा तेज,
तीर्थोद्धार किये कई, सोकर सूल की सेज।
धर्मधुरन्धर सद्गुरु, मंगलमय है नाम,
नेमिसूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ।। १ ।।

साहित्य के सम्राट् हो, शास्त्रविशारद जान,
स्वयं शारदा ने दिया, जैसे गुरु को ज्ञान।
व्याकरणे वाचस्पति, काव्यकला अभिराम,
श्री लावण्य सूरीश्वरा, वन्दन आठों याम ।। २ ।।

शब्दकोश के शहंशाह, सरिता शास्त्र समान,
कवि दिवाकर ने किया, काव्यशास्त्र का पान।
ग्रन्थों की रचना में राचे, सरस्वती के धाम,
दक्ष सूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ।। ३ ।।

शान्त सुधारस मृदुमनी, राजस्थान के दीप,
मरुधरोद्धारक सत्कवि, तुम साहित्य के सीप।
कविभूषण हो तीर्थप्रभावक, नयना हैं निष्काम।
सुशील सूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ।। ४ ।।

☼ प्राप्ति-स्थान ☼

- ☐ आचार्य श्री सुशील सूरि जैन ज्ञानमन्दिर
  शान्तिनगर मु. सिरोही–307001 (राज.)

- ☐ श्री अष्टापद जैनतीर्थ, सुशील विहार
  वरकाणा रोड, मु. रानी, जि. पाली (राज.)

- ☐ Shree Jain Swetamber Murtipujak Sangh
  (Gandhi Nagar Jain Temple)
  Fourth Main Road, Gandhinagar ☎
  Bangalore—560009 200036

卐

अनुक्रम

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
१.	विश्वकर्त्तृत्व मीमांसा (संस्कृत)	१–२२
२.	प्रशस्तिः (संस्कृत)	२३
३.	विश्वकर्त्तृत्वमीमांसा-सरल भाषानुवाद	२४-५४
४.	जगत् कर्त्तृत्व मीमांसा (संस्कृत)	१-११
५.	प्रशस्तिः (संस्कृत)	१२
६.	जगत् कर्त्तृव मीमांसा-सरल भाषानुवाद	१३-२६
७.	अष्टापद जैनतीर्थ : सुशील विहार निर्माण योजना	१–२०

卐

वन्दनीय गुरुदेवाः

प. पू. आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा.

॥ 卐 ॐ ह्रीँ अर्हं नमः 卐 ऐं नमः ॥

॥ चरमशासनाधिपति-श्रीवर्द्धमानस्वामिने नमः ॥

॥ अनन्तलब्धिनिधान-श्रीगौतमस्वामिने नमः ॥

॥ शासनसम्राट्श्रीनेमिलावण्य-दक्षसूरीश्वर-सद्गुरुभ्यो नमः ॥

विश्वकर्त्तृत्व-मीमांसा

[हिन्दी भाषानुवाद सहिता]

—: कर्त्ता :—

शास्त्रविशारद - साहित्यरत्न - कविभूषण

आचार्य श्रीमद् विजय सुशीलसूरिः

[मङ्गलाचरणम्]

स्मारं स्मारं जिनं वाणीं, ध्यायं ध्यायं च सद्गुरुम् ।
विश्वकर्त्तृत्वमीमांसा, रम्येयं क्रियते मया ॥१॥

विश्वोऽयमतीवविचित्रः। अत्र खलु जङ्गम-स्थावरभेदेन द्विधा स्वरूपं विभाति। चेतनधर्मसंवलिताः जङ्गमाः। अचेतनास्तावत् स्थावराः। तत्र जिज्ञासा-वृत्तिरुदेति यदयं विश्वः केनापि बुद्धिमता कर्त्रा निर्मितोऽथवा स्वभावत एवास्य प्रवृत्तिः। सत्ता? प्रश्नोऽयं पौनः पुण्येन विश्वस्मिन् उत्थितेऽद्यावधि शेमुषीमतां बुद्धि-व्यायामविषयः। नाहं परमार्थ-तत्त्ववेत्ता तथापि परमार्थतत्त्वविदां वचोऽनुरागः सन् यथामति **'विश्वकर्तृत्व-मीमांसां'** चिकीर्षुरस्मि।

किमस्य चित्रविचित्रस्य जगतः कश्चित् वस्तुतः कर्त्ता अस्ति? किं तावदीश्वर एव तस्य कर्त्ता? विषयेऽस्मिन् नैयायिकाः [वैशेषिकाः] कथयन्ति—यज्जगदेतत् कार्यम्। कार्योत्पत्ति कारणमन्तरा न सम्भवति। अतो जगतोऽप्युत्पत्तिकारणमसन्दिग्धम्। जगद्वैचित्र्यादपि कश्चिद् बुद्धिमान् कर्त्तेत्यनुमीयते। स च सर्वव्यापी सर्वज्ञः ईश्वर एवेति।

जैनदार्शनिकानां मतं नैयायिकमत-समीक्षा-पुरस्सरमनु-सन्धेयम्। यदा नैयायिकाः जगत् कार्यमिति कथयन्ति, तदा तेषां किं तात्पर्यम्? किं तेषामिदमाकूतम्?

(१) सावयवत्वाज्जगत् कार्यम्?

(२) अस्तित्वहीनवस्तुकारणानामाकस्मिक फलत्वाज्-जगत् कार्यम् ?

(३) एतत् केनापि बुद्धिमता निर्मितमिति स्वीकृतत्वात् कार्यम् ?

(४) परिवर्तनशीलत्वाद् विकारित्वाद् वा जगत् कार्यम् ?

एवं चेत् सावयवस्य किं तात्पर्यम् । यद्यस्य तात्पर्यम्—अवयवानामस्तित्वाद्यानं तर्हि अवयवेषु विद्यमानं सामान्यमपि कार्यरूपेण भवेत् । तदा तेषां विनश्वरता सिद्ध्येत, किन्तु तत्तु नैयायिकैरवयवहीनमनादि स्वीक्रियते । यदि तस्य तात्पर्यमवयवादस्ति—यस्यानेकेऽवयवा भवन्तियति तर्हि गगनस्यापि कार्यत्वं स्वीकार्यम्, किन्तु नैयायिकास्तान् नित्यमामनन्ति ।

पुनः कार्यस्य तात्पर्यमेकमस्तित्वहीनवस्तुनः कारणा-नामाकस्मिकसंगतित्वम् । यानि पूर्वं विद्यमानानि नासन्, तानि पश्चादपि भवितुं नार्हन्ति एवं सति वयं जगत्-कार्यमिति वक्तुं न समर्थाः । यतो हि पृथ्व्यादि-तत्त्वानामणवो नित्याः स्वीक्रियन्ते ।

यदि कार्यस्य तात्पर्यं केनापि निर्मितमिति गृह्यते तदा आकाशोऽपि कार्यं स्यात् । यदा कश्चिद् भूखननं विधाय

जानाति यत् तेन यो गर्तः कृतः तन्निष्ठश्राकाशोऽपि तेनैवकृतः।

यद्यस्य तात्पर्यं परिवर्त्तनशीलत्वं तर्हि तद्यप्यसङ्गतं स्यात् यतो हि ईश्वरस्य परिवर्त्तनशीलत्वं विकारित्वं वा कैरपि न तर्क्यंते। न च कल्पयितुं शक्यते। तस्यापि निर्माता [कर्त्तेति] स्वीकारेऽनन्तकर्तृत्वं प्रसङ्गः स्यात्। एवं चेदीश्वरः कर्त्ता तदा तु तस्यापि विकारित्वं परिवर्त्तनशीलत्वं प्रतिपद्येत। यतो हि तस्य कार्यमपि परिवर्तनशीलम्। सोऽपि निर्मितो लीनः।

एतद्रिक्तं जानीमो वयं यत् कदाचिद् घटितमघटितं वा भवेत् तदेव कार्यम्, किन्तु जगत्तु स्वरूपे तिष्ठति। तर्क्यंते तावद् यथा—लतावृक्षादिकार्यं तदा तथाकथित ईश्वरोऽपि कार्यं भविष्यति। यतो हि तस्येच्छा विचाराः विभिन्नसमयेषु विभिन्नरूपेण कार्याणि कुर्वन्ति तदा ते ईश्वरे निहिताः। तस्मात् कार्यं जगत्। नन्विच्छा विचाराणामाधारेण कार्यं चेदणुरपि कार्यं स्यात्। यतो हि तापेन तेषां वर्णेषु परिवर्तनानि भवन्ति। यदि तुष्यति दुर्जनन्यायेन स्वीक्रियते यज्जगत्कार्यम्। प्रत्येकस्य कार्यस्यैकं कारणं स्वीकरणीयमनिवार्यम्। एवमपि नेदमावश्यकं यद् बुद्धिमान् ईश्वरः। चेतनः कर्त्तेति।

ननु मानवनिर्मापकत्वाच्चेतनः कर्त्तेति चेन्न तस्याप्य-पूर्णत्वप्रसङ्गात् मानववत्। यदि शक्यते—यन्नेदं जगदेवंविधं कार्यं यथा मानवनिर्मितानि तत् तदन्यानि कार्याणि। तदानुमानं न सेत्स्यति। यतो हि जलादुत्थितो धूमो वह्निधूमसादृश्यं भजते, किन्तु जलेऽग्ने-रनुमानं न करोति। कश्चिदिति व्यवहारेऽपि दृश्यतेऽग्नि-विरोधिनो जलस्य तत्र सत्त्वात्।

ननु जगदेतत् सर्वथा भिन्नं कार्यं येनानुमितिः सम्भवा। एतादृशानि भवन्ति बहुतराणि कार्याणि येषां दर्शनेन तेषां कर्तृ णामनुमितिर्विधियते। अज्ञातप्रासादभग्नावशेषात् तस्य चेतनकर्त्तेत्यनुमीयते। तथैव जगदेतत् कार्यं तस्य कर्त्ता नैव दृष्टः। यथा—अज्ञातप्रासादभग्नावशेषस्य कर्त्तास्माभिर्न दृष्टस्तथैव जगतोऽपि। उभयमेतत् कार्यं अदृष्टकर्तृ कत्वादिति चेन्न।

यदि चेत् तर्क्यते जगत् कार्यं दर्शनात् सकर्तृ कप्रतीतेः। तदा प्रश्नोऽयमुदेति—अस्यां प्रतीतौ भवन्तः ईश्वरमनुमनन्ति, ईश्वरकर्तृ त्वादस्य कार्यत्वमनुमनन्ति। एवं चेदन्योन्याश्रयो नाम दोषः समुत्पद्येत।

तुष्यति दुर्जनन्यायेन यदि स्वीक्रियते तावद् यदस्य जगतः एक कर्त्ता। तस्य कार्यमेतद् जगदिति। तदा

तु तस्य शरीरमपि स्यात्, अशरीरिचेतनकर्तृत्वासम्भवात् । कर्तृत्वसामान्यमेवानुमानमिति चेन्न तस्यापि शरीरापेक्षितत्वात् । अन्यानि क्षित्यङ्कुराणि कार्याणि तेषां कर्त्तेश्वर इति चेन्न चक्रकदोषत्वात् । भवन्तस्तु तर्केणानेनैनं विषयं साधयितुमभिलषन्ति । सत्यपीश्वरसत्तास्वीकारे किं तावदीश्वरोपस्थितिमात्रेणैव विश्वसंसृष्टिः । एवं चेत् कुम्भकारोपस्थितिरपि विश्वसृष्टिं कर्त्तुं शक्नोति– उभयत्राप्युदासीनोपस्थितिमात्रस्य तुल्यत्वात् । सस्पृहं विश्वसृष्टिं करोतीति न युक्तम् शरीरमन्तरेच्छाया असम्भवात् । किं तावदीश्वरो विश्वसंरचनां शरीरक्रियाभिस्तनोत्युतान्याभिः क्रियाभिः ? उभयमप्यसम्भवम् । शरीरमन्तरा क्रियाऽसम्भवात् । तस्य सर्वव्यापकत्व-स्वीकारेणाऽपि सर्वस्रष्टृत्वं नैव सिद्ध्यति शरीराभावात् तर्कानुरोधेन स्वीक्रीयते चेद् शरीरिणोऽपि ईश्वरस्येच्छा क्रियाभ्यां विश्वकर्तृत्वम् । तदा किं तेनात्मगतोन्मादेन सृष्टिः प्रारब्धा ? यदि सत्यमेतत् तर्हि तस्यां स्थितौ विश्वस्मिन् प्राकृतिक व्यवस्था न प्रसज्येत । एवं चेत् किं तेनैषा रचना मनुष्याणां नैतिकानैतिककार्याधारेण कृता ? यदि सत्यमिदं तर्हि सोऽपि नैतिकव्यवस्था बद्धः । न च स्वातन्त्र्यमर्हति । किं करुणापरत्वात् तेन कृता विश्वसृष्टिः–जगत्सृष्टिः ?

तदा तु विश्वस्मिन् प्रसन्नतास्तु सुजनतायाश्च प्राधान्यं स्यात् । नान्यत् किमपि दुःखादिकं स्यात् । यदि तावद् उच्यते मनुष्याणां दुःखभोक्तृत्वं तेषां पूर्वकृतकर्मघटितम् तदा तु सुखमपि पूर्वकृतकर्मविलसितं स्यात् ।

पूर्वकृतकर्माणि यानि भाग्यरूपेण नियतिरूपेण वा भवद्भिः स्वीकृतानि तत्प्रेरितो मनुष्यः कुकर्मतत्पर इति चेद् दृष्टः (नियतिः) एव सृष्टिकर्त्तेति मन्यताम् । यदि ईश्वरेण क्रीडाकौतुकेन जगत्सृष्टिः कृता तर्हि स तु निरुद्देश्यकार्यकारी बालक इव प्रतिपद्येत । सोद्देश्यकृता सृष्टिरिति स्वीकारे एकस्मै दण्डोऽन्यस्मै पुरस्कारः कथं घटते ? एवं तु तस्य पक्षपातित्वं द्वेषित्वञ्च स्यात् ।

यदि सृष्टिरचना तस्य स्वभाव एव । तस्मादेव सृष्टिः प्रभवति तदा तु स्वभावादेव सृष्टिः प्रभवत्वस्वीकारे को दोषः ? एषा तु क्लिष्टकल्पनैव यत् केनाऽपि ईश्वरेणोपकरणादि साहाय्यं विनाऽस्य जगतो रचना कृते तु भव-विरुद्धम् । ईश्वरकर्तृत्व स्वीकारेऽपि तद् ईश्वरार्थं प्रयुक्तानि विशेषणानि न सङ्गच्छदन्ते । अनादिरनन्तो नित्य इति । तस्याशरीरित्वात् बुद्धिचैतन्यस्वरूपत्वं घटते । तत् स्वरूपं नानात्मकविश्वपदार्थ-संरचनायां भिन्नं परिवर्त्तनशीलं स्यात् । यदि तस्य बुद्धौ, चेतनायां

ज्ञाने वा किमपि परिवर्त्तनं न भवति, तर्हि सृष्टेर्विनाशस्य वा विभिन्नरूपाणि कथं दरीदृश्यते। सृष्टिविनाशाव-परिवर्त्तनीय-बुद्धेर्ज्ञानस्य वा परिणामाविति नैव भवितुमर्हतः। ज्ञानस्वभाव-परिवर्त्तनशीलः।

यदि तेनैव ज्ञानेन तात्पर्यं गृह्यते यच्च मानवीयसन्दर्भेषु प्रयुज्यते (तदतिरिक्तमन्यः सन्दर्भः ज्ञानेन न ज्ञायते चेत्) तदा तु परमात्मा, ईश्वरः सर्वज्ञः इति कथं स्वीकर्तुं शक्यते? तस्य किमपि ज्ञानमस्ति नवेति कथं ज्ञातुं शक्यते? इन्द्रियशून्यत्वात्। इन्द्रियाभावात् प्रत्यक्षज्ञानं न सम्भवति। विना प्रत्यक्षं किमपि अनुमानं न सम्भवति। विश्वरचनावैचित्र्यं व्याख्यातुं ईश्वरकर्तृत्वं स्वीकार्य्यमिति चेन्न। आपादनात् सिद्धिस्तदैव स्वीकर्तुं शक्यते यदा किमप्यन्यत् परिकल्पनं युक्त्या सम्भवं न स्यात्। अत्र तु अन्या अपि सम्भावनाः परिकल्पनाः भवितुमर्हन्ति।

ईश्वरकर्त्तृत्वस्वीकारं विनापि नैतिकव्यवस्थया कर्मसिद्धान्तेन वा सृष्टिरियं व्याख्यातुं पार्यते। यदि भवन्तः एकमीश्वरमामनन्ति तदा तु ईश्वराणां समुदायोऽपि कल्पितुं शक्यते। एवं सति बहुषु ईश्वरेषु विसंवाद-सम्भवत्वं प्रतिपाद्यते चेन्न। यदा पिपीलिकाः, मधुमक्षिकादयः समन्वयेन कार्यं सम्पादयितुं समर्थाः भवन्ति तदा कथं ईश्वरसमुदाये विसंवादः प्रसज्येत।

अनेकस्वीकृतेषु विवादसम्भवश्चेद्, तदा तु भवत् प्रतिपादितेश्वरगुणेषु न्यूनता प्रतीतिः। विवादपरानस्य ईश्वरस्य अविश्वसनीयत्वात् ।

अनेन प्रकारेण ईश्वरकर्तृत्वसिद्धेः भवतां सकला अपि प्रयासा विफली भविष्यन्तीति कृत्वेश्वरसत्तैव नास्तीति स्वीकार्यम् ।

परम पूज्य कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यप्रवर-विरचित 'अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका' स्तवने कथितः श्लोकोऽयमपि तदर्थपरः सम्यग् अनुशीलनीयः–

कर्त्तास्ति कश्चिद् जगतः स चैकः,
स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः ।
इमाः कुहेवाकविडम्बनाः स्युः–
स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥

'जगतः प्रत्यक्षादिप्रमाणोपलक्ष्यमान चराचरस्य विश्वत्रयस्य कश्चिद् अनिर्वचनीयस्वरूपः पुरुषविशेषः, कर्त्ता-स्रष्टा, अस्ति-विद्यते। ते हि इत्थं प्रमाणयन्ति। उर्वी-पर्वत-तर्वादिकं सर्वं बुद्धिमत्कर्तृकम्। यद् यत् कार्यं तत् तत् सर्वं बुद्धिमत्कर्तृकम्। यथा–घटः तथा चेदं तस्मात् तथेति। व्यतिरेके व्योमादि। यश्च बुद्धि-

मांस्तत्कर्त्ता स भगवान् ईश्वर एकेति। न चायमसिद्धो हेतुः[1]। यतो भूभूधरादेः स्वस्वकारणकलापजन्यतया अवयवितया वा कार्यत्वं सर्ववादिभिः स्वीकृतमेव। नाप्यनैकान्तिको[2] विरुद्धो[3] वा। विपक्षादत्यन्त-व्यावृतत्वात्। नापि कालात्यापदिष्टः[4]। प्रत्यक्षानुमानागमाबाधितधर्मधर्म्यनन्तरप्रतिपादितत्वात्। नापि प्रकरणसमः[5] तत्प्रतिपन्थि धर्मोत्पादन समर्थप्रत्यनुमानाभावात्। न च वाच्यम् ईश्वरः पृथ्वीपृथ्वीधरादेर्विधाता न भवति; अशरीरत्वात् निर्वृत्तात्मवत् इति प्रत्यनुमानं तद्बाधकमिति। यतोऽत्र ईश्वररूपो धर्मी प्रतीतोऽप्रतीतो वा प्ररूपितः? न तावद् प्रतीतः हेतोराश्रयसिद्धिप्रसङ्गात्। प्रतीतश्चेत्, येन प्रमाणेन स प्रतीतस्तेनैव किं स्वयमुत्पादितस्वतनुर्न प्रतीयते। इत्यतः कथमशरीरत्वम्। तस्मात् निरवद्य एवायं हेतुरिति।

---

१. अयं साध्यसमशब्देनाभिधीयते साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः।
[गौतमसूत्रम्, १-२-८]

२. अनैकान्तिकः सव्यभिचारः। १-२-५ [गौतमसूत्रम्]

३. सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः। १-२-६ [गौतमसूत्रम्]

४. कालाव्ययापदिष्टः कालातीतः। १-२-९ [गौतमसूत्रम्]

५. यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः।
१-२-७ [गौतमसूत्रम्]

स चैक इति । च पुनरर्थे । स पुनः-पुरुषविशेषः, एकः—अद्वितीयः । बहूनां हि विश्वविधातृत्वस्वीकारे परस्पर-विमतिसम्भावना या अनिवार्यत्वात् एकैकस्य वस्तुनोऽन्यान्यरूपतयानिर्माणे सर्वसमञ्जसमापद्येत इति ।

तथा स सर्वग इति । सर्वत्र गच्छतीति-सर्वव्यापी । तस्य हि प्रतिनियतदेशवर्त्तित्वेऽनियतदेशवृत्तीनां विश्व-त्रयान्तर्वर्ति पदार्थसार्थानां यथावन्निर्वाणानुपपत्तिः । कुम्भ-कारादिषु तथा दर्शनाद् । अथवा सर्वं गच्छति-जानातीति सर्वज्ञः । 'सर्वे गत्यर्थाः ज्ञानार्थाः' इति वचनात् । सर्वज्ञत्वाभावे हि यथोचितोपादानकरणाद्यनभिज्ञत्वाद् अनुरूपकार्योत्पत्तिर्न स्यात् । तथा स स्ववशः – स्वतन्त्रः । सकलप्राणिनां स्वेच्छया सुख-दुःखयोरनुभावनसमर्थत्वात् । तथा चोक्तम्—

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्, स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।
अन्यो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।।

पारतन्त्र्ये तु तस्य परमुखापेक्षितया मुख्यकर्तृत्वव्याघाताद् अनीश्वरत्वापत्तिः । तथा स नित्य इति । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपः । तस्य हि अनित्यत्वे परोत्पाद्यतया कृतकत्वप्राप्तिः । अपेक्षितपरव्यापारो हि भावः स्वभावनिष्पत्तौ कृतक इत्युच्यते । यश्चापरस्तत्कर्त्ता

कल्प्यते, स नित्योऽनित्यो वा स्यात् ? नित्यश्चेत् अधिकृतेश्वरेण किमपराद्धम् । अनित्यश्चेत्, तस्याप्युत्पादकान्तरेण भाव्यम् । तस्यापि नित्यानित्यकल्पनायां अनवस्थादौस्थ्यमिति ।

तदेवमेकत्वादि-विशेषणविशिष्टो भगवान् ईश्वरस्त्रिजगत्कर्त्ता इति । पराभ्युपगममुपदर्श्य उत्तरार्धेन तस्य दुष्टत्वमाचष्टे । इमाः—एताः; अनन्तरोक्ताः कुहेवाकविडम्बनाः विचारचातुरीबाह्यत्वेन तिरस्काररूपत्वाद् विगोपकप्रकाराः । स्युः भवेयुः । तेषां प्रामाणिकापसदानाम् । येषां हे स्वामिन् ! त्वं नानुशासकः—न शिक्षादाता ।

तदभिनिवेशानां विडम्बना रूपत्व ज्ञापनार्थमेव पराभिप्रेतपुरुष-विशेषणेषु प्रत्येकं तद् शब्दप्रयोगमसूयागर्भमाविर्भावयाञ्चकार स्तुतिकारः । तथा चैवमेव निन्दनीयं प्रति वक्तारो वदन्ति । स मूर्खः स पापीयान् स दरिद्र इत्यादि । त्वमित्येकवचनसंयुक्तयुष्मद् शब्दप्रयोगेण परमेशितुः परमकारुणिकतयानपेक्षितस्वपरपक्षविभागमद्वितीयं हितोपदेशकत्वं ध्वन्यते ।

अतोऽत्रायमाशयः । यद्यपि भगवानविशेषेण सकलजगज्जन्तुजातहितावहां सर्वेभ्य एव देशनावाचमाचष्टे,

तथापि सैव केषाञ्चिद् निचितनिकाचित[1] पापकर्म-कलुषितात्मनां रुचिरूपतया न परिरमते। अपुनर्बन्धकादि[2]व्यतिरिक्तत्वेनायोगत्वात्। तथा च कादम्बर्यां[3] बाणोऽपि बभाण–'अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखमुपदेशगुणाः। गुरुवचनमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य' इति। अतो वस्तुवृत्या न तेषां भगवाननुशासक इति।

न चैतावता जगद्गुरोरसामर्थ्यसम्भावना। न हि कालदष्टमनुज्जीवयन् समुज्जीवितेरदष्टका विषभिषगुपालम्भनीयः, अतिप्रसङ्गात्। स हि तेषामेव दोषः। न खलु निखिल भुवनाभोगमवभासयन्तोऽपि भानवीयाः भानवः, कौशिकलोकस्यालोकहेतुतामभजमाना उपालम्भ-

---

१. उदये संकममुदये चउसुवि दादुं कमेणणो सक्कं।
उवसंतं च णिधत्ति णिकाचिदं होदिजं कम्मं॥
[गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा–४४०]

२. पावं ण तिव्वभावा कुणइण बहुमन्नई भवं घोरम्।
उच्चिय अट्ठिइं च सेवइ सव्वत्थव्वि अपुणबन्धोत्ति॥
[धर्मसंग्रह तृतीयाधिकरण]

३. बाणभट्टकृतकादम्बरी, पूर्वार्द्धं पृ. १०३, पं. १०

सम्भावनास्पदम् । तथा च पूज्यतार्किकशिरोमणि-श्रीसिद्धसेनदिवाकरः–

सद्धर्मबीजवपनानघ कौशलस्य ,
यल्लोकबान्धव ! तवापि खिलान्यभूवन् ।
तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु ,
सूर्यांशवो मधुकरीचरणावदाताः[1] ॥

अथ कथमिव तत् कुहेवाकानां विडम्बनारूपत्वम् इति ब्रूमः । यद्तावद् उक्तं परैः–'क्षित्यादयो बुद्धिमत् कर्तृकाः कार्यत्वाद् घटवदिति ।' तद् अयुक्तम् । व्याप्ते-रग्रहणात् । 'साधनं हि सर्वत्र व्याप्तौ प्रमाणेन सिद्धायां साध्यं गमयेत्' इति सर्ववादिसम्वादः । स चायं जगन्ति सृजन् सशरीरोऽशरीरो वा स्यात् ? सशरीरोऽपि किम-स्मदादिवत् दृश्यशरीरविशिष्टः, उतपिशाचादिवददृष्ट-शरीरविशिष्टः ? प्रथमपक्षे प्रत्यक्षबाधः तमन्तरेणापि च जायमाने तृणतरुपुरन्दरधनुरभ्रादौ कार्यत्वस्य दर्शनात् प्रमेयत्वादिवत् साधारणानैकान्तिको हेतुः ।

द्वितीयविकल्पे पुनरदृश्यशरीरत्वे तस्य माहात्म्य-विशेषकारणम्, आहोस्विदस्मदाद्यदृष्टवैगुण्यम् ? प्रथम-

---

१. द्वितीय द्वात्रिंशिका श्लोक–१३ ।

प्रकारः कोशपान-प्रत्यायनीयः तत्सिद्धौ प्रमाणाभावात् । इतरेतराश्रयदोषापत्तेश्च । सिद्धे हि माहात्म्यविशेषे तस्यादृश्यशरीरत्वं प्रत्येयतव्यम् । तत् सिद्धौ च माहात्म्य-विशेषसिद्धिरिति । द्वैतीयिकस्तु प्रकारो न संचरत्येव विचारगोचरे, संशयानिवृत्तेः । किं तस्यासत्त्वाद् अदृश्य-शरीरत्वं वान्ध्येयादिवत् किं वास्मदाद्यदृष्ट-वैगुण्यात् पिशाचादिवद् इति निश्चय....अशरीरश्चेत् तदा दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यम् । घटादयो हि कार्यरूपाः सशरीर-कर्तृका-दृष्टाः । अशरीरस्य च सतस्तस्य कार्यप्रवृत्तौ कुतः सामर्थ्यम् ? आकाशादिवत् । तस्मात् सशरीराशरीर - लक्षणे पक्षद्वयेऽपि कार्यत्व-हेतोर्व्याप्त्यसिद्धिः ।

किञ्च, त्वन्मतेन कालात्ययापदिष्टोऽप्ययं हेतुः । धर्म्येकदेशस्य तरुविद्युदभ्रादेरिदानीमप्युत्पद्यमानस्य विधातुरनुपलभ्यमानत्वेन प्रत्यक्षबाधितधर्म्यनन्तरं हेतु भणनात् ।

तदेवं न कश्चिद् जगतः कर्त्ता । एकत्वादीनि तु जगत्कर्तृत्वव्यवस्थापनायानीयमानानि तद् विशेषणानि षण्ढं प्रति कामिन्याः रूप-संपन्निरूपणप्रायाण्येवं तथापि तेषां विचारासहत्वख्यापनार्थं किञ्चिदुच्यते ।

तत्रैकत्वचर्चस्तावत्। बहूनामेककार्यकरणे वैमत्यसम्भावना इति नायमेकान्तः।

अनेककीटिकाशतनिष्पाद्यत्वेऽपि शक्रमूर्ध्नः, अनेकशिल्पिकल्पितत्वेऽपि प्रासादादीनां नैकसरघानिर्वर्तितत्त्वेऽपि मधुच्छत्रादीनां चैकरूपताया अविगानेनोपलम्भात्।

अथ तेष्वप्येक एव ईश्वरः कर्त्तेति ब्रूषे। एवं चेद् भवता भवानीपतिं प्रति निष्प्रतिमा वासना, तर्हि कुविन्द कुम्भकारादितिरस्कारेण पटघटादीनामपि कर्त्ता स एकः किं न कल्प्यते।

अथ तेषां प्रत्यक्षसिद्धं कर्त्तृत्वं कथमपह्नोतुं शक्यम्? तर्हि कीटिकादिभिः किं तव विराद्धं यत् तेषामदृश्यतादृशप्रयाससाध्यं कर्तृत्वमेकहेलयैव चापलप्यते, तस्माद् वैमत्यभयाद् महेशितुरेकत्वकल्पना भोजनादिव्ययभयात् कृपणस्यान्तवल्लभपुत्रकलत्रादि परित्यजनेन शून्यारण्यानीसेवनमिवास्ते।

तथापि सर्वगतत्वमपि तस्य नोपपन्नम्। तद्धि शरीरात्मना ज्ञानात्मना वा स्यात्?

प्रथमपक्षे तदीयेनैव देहेन जगत्त्रयस्य व्याप्तत्वाद् इतरनिर्मेय पदार्थानामाश्रयानवकाशः।

द्वितीयपक्षे तु सिद्धसाध्यता। अस्माभिरपि निरतिशयज्ञानात्मना परमपुरुषस्य जगत्त्रयक्रोडी - करुणाभ्युपगमात्।

यदि परमेवं भवत् प्रमाणीकृतेन वेदेन विरोधः। तत्र हि शरीरात्मना सर्वगतत्वमुक्तम्—"विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतो मुखो विश्वतः पाणिरुतः विश्वतः पात्' इत्यादिश्रुतेः[1] ।"

यच्चोक्तं तस्य प्रतिनियतदेशवर्तित्वे त्रिभुवनगतपदार्थानामनियतदेशवृत्तीनां यथावन्निर्माणानुपपत्तिरिति। तत्रेदं पृच्छ्यते। स जगत्त्रयं निर्मिमाणस्तक्षादिवत् साक्षाद् देहव्यापारेण निर्मिमीते, यदि वा सङ्कल्पमात्रेण ?

प्रथमपक्षे एकस्यैव भूभूधरादेर्विधानेऽक्षोदीयसः कालक्षेपस्य सम्भवात् ब्रंहीयसाप्यनेहसा न परिसमाप्तिः। द्वितीयपक्षे तु संकल्पमात्रेणैव कार्यकल्पनायां नियतदेशस्थायित्वेऽपि न किञ्चिद् दूषणमुत्पश्यामः। नियतदेशस्थायिनां सामान्यदेवानामपि संकल्पमात्रेणैव तत् तत्कार्यसम्पादनप्रतिपत्तेः।

---

१. शुक्लयजुर्वेद माध्यदिन संहितायां सप्तदशेऽध्याये १९ मन्त्रे।

किञ्च, तस्य सर्वगतत्वेऽङ्गीक्रियमाणेऽशुचिषु निरन्तर-सन्तमशेषुनरकादिस्थानेष्वपि तस्य वृत्तिः प्रसज्यते। यथा चानिष्टापत्तिः।

अथ युष्मत् पक्षेऽपि यदा ज्ञानात्मना सर्वं जगत् त्रयं व्याप्नोतीत्युच्यते तदा शुचिरसास्वादीनामप्युपालम्भ-संभावनात् नरकादि - दुःखस्वरूपसंवेदनात्मकतया दुःखानुभवप्रसङ्गात् अनिष्टापत्तिस्तुल्यैवेति चेत्, तदेतदुपपत्तिभिः प्रतिकर्त्तुमशक्तस्य धूलिभिरिवाषकरणम्। यतो हि ज्ञानमप्राप्यकारिस्वस्थानस्थमेवविषयं परिच्छिनत्ति न पुनस्तत्र गत्वा। तत् कुतो भवदुपालम्भः समीचीनः। न हि भवतोऽप्यशुचिज्ञानमात्रेण तद् रसानुभूतिः। तद्भावे हि स्रक्चन्दनाङ्गनारसवत्यादिचिन्तनमात्रेणैव तृप्तिसिद्धौ तत् प्राप्तिप्रयत्नवैफल्यप्रसक्तिरिति।

यत्तु ज्ञानात्मना सर्वगतत्वे सिद्धसाधनं प्रागुक्तम् तच्छक्तिमात्रमपेक्ष्य मन्तव्यम्। तथा च वक्तारो भवन्ति। अस्य मतिः सर्वशास्त्रेषु प्रसरतीति। न च ज्ञानं प्राप्यकारि तस्यात्मधर्मत्वेन बहिर्निर्गमाभावात्। बहिर्निर्गमे चात्मनोऽचेतनत्वतया अजीवत्वप्रसङ्गः। न हि धर्मो धर्मिणमतिरिच्य क्वचन केवलो विलोकितः। यच्च परे दृष्टानयन्ति यथा—सूर्यस्य किरणाः गुणरूपा अपि सूर्याद्

निष्क्रम्य भुवनं भासयन्ति, एवं ज्ञानमप्यात्मनः सकाशाद् बहिर्निर्गत्य प्रमेयं परिच्छिनत्तीति। तत्रेदमुत्तरम्। किरणानां गुणत्वमसिद्धम्, तेषां तैजस् - पुद्गलमयत्वेन द्रव्यत्वात्। यश्च तेषां प्रकाशात्मा गुणः स तेभ्यो न जातु पृथग् भवतीति। तथा च धर्मसंग्रहिण्यां याकिनी महत्तराधर्मसूनुपूज्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरः-

किरणा गुणा न दव्वं तेसिं पयासो गुणो न वा दव्वं।
जं नाणं आयगुणो कहमदव्वो स अन्नत्थ ॥ १ ॥

मन्तूण न परिच्छिन्दइ नाणं णेयं तयम्मि देसम्मि।
आयत्थं चिय नवरं अचिंत सत्तीय विण्णेयं ॥ २ ॥

लोहोपलरससत्ती आयत्था चेव भिन्नदेसं पि।
लोहं आगरिसंती दीसइ इह कज्जपच्चक्खा ॥ ३ ॥

एवमिह नाण सत्ती आयत्था चेव हृदि लोगंतं।
जइ परिछिदइ सम्मं को णु बिरोहो भवे तत्थं ॥ ४ ॥

संस्कृतच्छाया-

किरणा गुणा न द्रव्यं, तेषां प्रकाशो गुणो न वा द्रव्यम्।
यज्ज्ञानमात्मगुणः, कथमद्रव्यः स अन्यत्र ॥ १ ॥

गत्वा न परिच्छिनत्ति, ज्ञानं ज्ञेयं तस्मिन् देशे।
आत्मस्थमेव न वरम्, अचिन्त्य शकत्या तु विज्ञेयम् ॥ २ ॥

लोहोपलस्य शक्तिः, आत्मस्थैव भिन्नदेशमपि ।
लोहमाकर्षन्ती दृश्यत, इह कार्यं प्रत्यक्षा ।। ३ ।।

एवमिह ज्ञानशक्तिः, आत्मस्थैव हन्त लोकान्तम् ।
यदि परिच्छिनत्ति, सर्वं को नु विरोधो भवेत् तत्र ।। ४ ।।

अथ सर्वगः सर्वज्ञः इति व्याख्यातम् । तत्रापि प्रतिविधीयते ।

ननु तस्य सार्वज्ञं केन प्रमाणेन गृहीतम् । प्रत्यक्षेण परोक्षेण वा ? न तावत् प्रत्यक्षेण, तस्येन्द्रिय-सन्निकर्षोत्पन्नतयातीन्द्रियग्रहणासामर्थ्यात् । नापि परोक्षेण । तद्धि अनुमानं शाब्दं वा स्यात् न तावदनुमानम्, तस्य लिङ्गि-लिङ्ग-सम्बन्ध-स्मरण-पूर्वकत्वात् । न च तस्य सर्वज्ञत्वेऽनुमेये किञ्चिदन्यभिचारी-लिङ्ग पश्यामः । तस्यात्यन्त-विप्रकृष्टत्वेन तत्प्रतिबद्धलिङ्ग-सम्बन्धग्रहणाभावात् अथ तस्य सर्वज्ञत्वं विना जगद्वैचित्र्यमनुपपद्यमानं सर्वज्ञत्वमर्थादापादयतीति चेन्न । अविनाभावाभावात् । न हि जगद्वैचित्री तत् सार्वज्ञ्यं विनान्यथा नोपपन्ना । द्विविधं हि जगत् स्थावर-जङ्गमभेदात् । तत्र जङ्गमानां वैचित्र्यं स्वोपात्तशुभाशुभकर्म-पारिपाकवशेनैव । स्थावराणां तु सचेतनानामियमेव गतिः । अचेतनानां तु

तदुपभोगयोग्यता साधनत्वेनानादिकालसिद्धमेव वैचित्र्य-मिति।

नाप्यागमस्तत्साधकः स हि तत्कृतोऽन्यकृतो वा स्यात्? तत्कृत एव चेत् तस्य सर्वज्ञतां साधयति तदा तस्य महत्त्वक्षतिः। स्वयमेव स्वगुणोत्कीर्त्तनस्य महता-मधिकृततत्त्वात्। अन्यच्च, तस्य शास्त्रकर्तृत्वमेव न युज्यते। शास्त्रं हि वर्णात्मकम्। ते च ताल्वादि-व्यापारजन्याः। स च शरीरे एव सम्भवी। शरीरा-भ्युपगमे च तस्य पूर्वोक्ता एव दोषाः। अन्यकृतश्चेत् सोऽन्यः सर्वज्ञोऽसर्वज्ञो वा? सर्वज्ञत्वे तस्य द्वैतापत्त्या प्रागुक्तैकत्वाभ्युपगमबाधः तत्साधकप्रमाणचर्यायामन-वस्थापातश्च।

असर्वज्ञश्चेत् कस्तस्य वचसि विश्वासः? किं बहुना ईश्वरस्य विश्वकर्तृत्वे हठवादः परित्याज्यः। ईश्वरः शुद्धः बुद्धः स्वीकार्यः। नास्माकं क्षतिः किन्तु विनम्रोऽयमनुरोधो यदस्मिन् कर्तृत्ववादे दोषान् परि-शीलय। न कथमपीश्वरः कलंकथितन्यस्तत्र भवतेति-शम्।

उपसंहार

प्रपञ्चाञ्चितस्यास्य संसारस्य न कोऽपि कर्त्ता परमेश्वरः, परमात्मा, न देवो न दानवः, न मनुष्यास्तिर्यंचो वेति । न चाऽपि ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः ।

नायं विश्वो भूतकालेऽपि केनाऽपि प्राणिनारचितः, न वर्त्तमानकालेऽपि चाऽस्य निर्माता कश्चित्, न भविष्यतीत्यवधार्यम् । एतावतैव सर्वज्ञविभुभाषित जैनदर्शने त्रिकालदर्शिभिस्तीर्थङ्करैः, श्रुतकेवलीभिर्गणधरैर्महर्षिभिश्च पूज्यागमशास्त्रेषु विश्वकर्तृत्वविषये यत् त्रिकालाबाधितं प्रोक्तं तत् तु सत्यं वास्तविकञ्चेति । तदाधारेणैव मयाऽपि **विश्वकर्तृत्वमीमांसा** संग्रथितेति विज्ञाय तत्र ज्ञाताज्ञातभावेन गच्छतः स्खलेनन्यायेन वा क्वचिदपि मदीया त्रुटिश्चेत् **'मिच्छामि दुक्कडं'** कृत्वा वच्मि—यदयं संसारोऽनाद्यनन्तश्चेति ।

शिवमस्तु सर्वजगतः,
परहित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं,
सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः ।। १ ।।

□□

प्र...श...स्ति

[अनुष्टुप्-छन्दः]

नेत्राकाशशरव्योम–
युग्मवर्षे सुवैक्रमे ।
वर्षादौ कार्त्तिके मासे ,
मङ्गले पूर्णिमा दिने ।। १ ।।
विश्वप्रसिद्ध-तीर्थेऽस्मिन् ,
श्रीराणकपुरे वरे ।
शुभोपधान - वेलायां ,
मङ्गले मङ्गलप्रदे ।। २ ।।
नेमि - लावण्य - दक्षाणां ,
गुरूणां कृपया मया ।
विश्वकर्त्तृत्वमीमांसा ,
कृता सुशीलसूरिणा ।। ३ ।।
विश्वकर्त्तृत्व-जिज्ञासा–
दत्तचित्तानुवर्त्तिनाम् ।
बोधनार्थं च मीमांसा ,
वीतराग - मतानुगा ।। ४ ।।
आगमतत्त्व - संशुद्धया ,
बुद्धया वै कल्पिता कृतिः ।
यावत् सूर्य-शशाङ्कौ च ,
भातु तावदियं कृतिः ।। ५ ।।

॥ 卐 ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः 卐 ॥

॥ ऐं नमः ॥ 卐 ॥ सद्गुरुभ्यो नमः ॥

❋ विश्वकर्त्तृत्व-मीमांसा ❋

ग्रन्थ का

सरल हिन्दी भाषानुवाद

विश्व अत्यन्त विचित्र है। यहाँ जड़ एवं चेतन रूप द्विधा भेद परिलक्षित हैं। चेतनात्मक स्वभाव वाले **जंगम** तथा अचेतन स्वभावी **स्थावर** कहलाते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में जिज्ञासावृत्ति का उदय होता है कि यह विश्व-जगत् किसी बुद्धिमान् कर्त्ता के द्वारा निर्मित है? अथवा इसका यह स्वरूप स्वभावतः प्रवृत्त है? यह प्रश्न बारम्बार विचारणीय रहा है और आज भी मनीषियों की प्रखर मनीषा का व्यायाम बना हुआ है।

मैं [सुशीलसूरि] परमार्थ तत्त्ववेत्ता न होते हुए भी परमार्थतत्त्वज्ञों (केवलज्ञानियों) के वचनों का आलम्बन लेकर अर्थात् अनुगमन कर यथामति **'विश्वकर्तृत्व मीमांसा'** कृति की रचना करना चाहता हूँ।

क्या इस चित्रविचित्र विश्व का वस्तुतः कोई '**कर्त्ता-निर्माता-रचयिता**' है ?

क्या ईश्वर ही इसका कर्त्ता है ?

इस विषय में न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन का मत है कि यह विश्व-जगत् कार्य है। अतः निश्चित रूप से इसका कर्त्ता कोई बुद्धिमान् ही हो सकता है और वह ईश्वर है। कार्य की उत्पत्ति कारण के बिना सम्भाव्य नहीं। अतः कार्य विश्व-जगत् की उत्पत्ति का कारण असंदिग्ध है। विश्व-जगत् की विचित्रता से भी किसी बुद्धिमान् कर्त्ता का अनुमान होता है और वह सर्वव्यापी सर्वज्ञ ईश्वर ही है।

जैन दार्शनिक मत के परिप्रेक्ष्य में न्याय-वैशेषिक मत की समीक्षा करनी चाहिए। नैयायिक दर्शन यह कहता है कि—विश्व-जगत् एक कार्य है तो कार्य से उसका तात्पर्य क्या है ? क्या वह यह कहना चाहता है कि कार्य वह इसलिए है कि (१) वह अवयवों से (सावयव) बना है ? या (२) वह किसी अस्तित्वहीन वस्तु के कारणों की आकस्मिक संगति का फल है। या (३) ऐसी वस्तु है जिसे कोई किसी के द्वारा बनाई हुई मानता है। या (४) वह परिवर्तनशील वस्तु है।

सावयव से क्या तात्पर्य है ? यदि इसका तात्पर्य अवयवों के रूप में आता है तो अवयवों में विद्यमान जो सामान्य (जाति) है उसे भी कार्य के रूप में माना जाना चाहिए। ऐसा मानने पर वे नश्वर होंगे किन्तु उन्हें नैयायिक अवयवहीन और अनादि मानते हैं। यदि इसका तात्पर्य अवयव से है, जिसके कई अवयव हों तो आकाश को भी कार्य मानना होगा किन्तु नैयायिक उसे नित्य मानते हैं।

पुनश्च कार्य का तात्पर्य एक अस्तित्वहीन वस्तु के कारणों की आकस्मिक संगति, जो पहले विद्यमान नहीं थे; नहीं हो सकता है क्योंकि तब हम विश्व-जगत् को कार्य नहीं कह सकेंगे क्योंकि पृथ्वी आदि के तत्त्वों के अणु नित्य भी माने जाते हैं।

यदि कार्य से तात्पर्य [किसी के द्वारा बनाया हुआ] लिया जाए तो आकाश को भी कार्य मानना होगा क्योंकि जब कोई व्यक्ति भूमि-जमीन खोदकर गड्ढा बनाता है तो वह समझता है कि जो गड्ढा उसने खोदा है, उसमें जो आकाश है वह उसी ने बनाया है।

यदि इसका तात्पर्य 'जो परिवर्तनशील हो' लिया जाता है तो यह भी सही नहीं है क्योंकि तब यह तर्क भी

हो सकता है कि ईश्वर भी परिवर्तनशील है, और उसे बनाने वाला भी कोई कर्त्ता होना चाहिए। उस कर्त्ता को बनाने वाला भी एक कर्त्ता मानना होगा और इस प्रकार अनन्त कर्त्ता मानने होंगे। यदि ईश्वर कर्त्ता है तो वह ही परिवर्तनशील होगा क्योंकि उसका कार्य परिवर्तनशील है और वह निर्माण में लगा हुआ है।

इसके अतिरिक्त हम जानते हैं कि जो बातें कभी घटित होती हैं और अन्य किसी समय घटित नहीं होतीं, उन्हें कार्य कहा जाता है, किन्तु विश्व-जगत् अपने रूप में सदैव विद्यमान रहता है। यदि यह तर्क दिया जाए कि विश्व-जगत् के अन्दर विद्यमान वस्तुएँ जैसे पेड़-पौधे कार्य हैं तो फिर आपका तथाकथित ईश्वर भी कार्य होगा, क्योंकि उसकी इच्छा और विचार विभिन्न समयों में विभिन्न रूप से कार्य करते माने जायेंगे और वे ईश्वर में निहित हैं। जैसे—पेड़-पौधे जगत् में निहित हैं। अतः विश्व-जगत् को कार्य माना गया है। इस प्रकार इच्छा और विचार के आधार पर वह कार्य हो जाता है। तब अणु भी कार्य बन जायेंगे, क्योंकि ताप के द्वारा उनके रङ्गों में परिवर्तन आते हैं।

यदि तर्क के लिए मान भी लें कि विश्व-जगत् कार्य है और प्रत्येक कार्य का एक कर्त्ता कारण होता है। अतः

विश्व-जगत् का भी कोई कारण है तो यह मानना आवश्यक नहीं है कि वह कारण कोई बुद्धिमान् चेतनाशील कर्त्ता ही होगा, जैसा आप ईश्वर को मानते हैं।

यदि यह तर्क दें कि मानव-कर्त्ता के निर्देशन के आधार पर ईश्वर को चेतन कर्त्ता माना गया है तो उसी आधार पर उसे मानव के समान ही अपूर्ण माना जायेगा। यदि तर्क दें कि यह विश्व-जगत् इस प्रकार का कार्य नहीं है, जैसे मानव निर्मित अन्य कार्य होते हैं। उनके कुछ समान ही कुछ अन्य प्रकार के कार्य होते हैं तो इससे कोई अनुमान सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि जल से उठने वाला धुँआ उसी धुँए के समान है जो आग से उठता है किन्तु जल में अग्नि का अनुमान कोई नहीं करता।

यदि यह कहा जाए कि विश्व-जगत् एक बिल्कुल भिन्न प्रकार का कार्य है, जिससे ऐसा अनुमान सम्भव है, चाहे अब तक कोई इस प्रकार का कार्य पैदा करते हुए नहीं देखा गया है। तो फिर पुराने खंडहरों को देखकर यह अनुमान करना होगा कि ये भी किसी चेतन कर्त्ता के कार्य हैं, क्योंकि ये भी कार्य हैं और उनका कोई चेतन कर्त्ता हमने नहीं देखा है। ये दोनों कार्य हैं और दोनों का

कर्त्ता हमने नहीं देखा। यदि तर्क दिया जाए कि विश्व-जगत् ऐसा कार्य है जिसे देखकर हमें यह अहसास होता है कि यह किसी के द्वारा अवश्य बनाया हुआ होना चाहिए तो हम पूछेंगे कि—इस अहसास से आप ईश्वर का अनुमान करते हैं या कि ईश्वर के बनाये हुए होने के तथ्य से इसके कार्य होने का अनुमान करते हैं। इस प्रकार यह अन्योन्याश्रय दोष हो जायेगा। इसके अलावा यदि मान भी लें कि विश्व (जगत्) किसी एक कर्त्ता का बनाया हुआ है तो उस कर्त्ता का कोई शरीर भी होना चाहिए, क्योंकि बिना शरीर के कोई चेतन कर्त्ता नहीं है। यदि कहा जाए कि कर्तृत्व सामान्य का ही अनुमान करते हैं कि कर्त्ता चेतन है तो आपत्ति होगी कि ऐसा असम्भव है क्योंकि कर्तृत्व भी किसी शरीर में ही रहता है। प्रश्न है कर्त्ता क्यों किसी शरीर में ही रहता है? यदि अन्य कार्यों का उदाहरण लें, जैसे खेत में उगे अंकुर, तो हम पायेंगे कि उन्हें रचने वाला कोई चेतन कर्त्ता नहीं है। यदि आप कहेंगे कि ईश्वर उनका कर्त्ता है तो वह चक्रक दोष हो जायेगा, क्योंकि इसी तर्क से इसी विषय से आप सिद्ध करना चाहते थे।

तर्क के लिए हम मान लेते हैं कि ईश्वर है। अब क्या उसकी उपस्थिति मात्र से विश्व जगत् की सृष्टि हो

जाती है ? यदि ऐसा है तो फिर कुम्भकार (कुम्हार) की उपस्थिति भी विश्व-जगत् की सृष्टि कर सकती है, क्योंकि केवल उदासीन उपस्थिति दोनों में समान है ।

क्या ईश्वर ज्ञान और इच्छापूर्वक विश्व-जगत् की सृष्टि करता है ? यह असम्भव है, क्योंकि बिना शरीर के ज्ञान और इच्छा हो नहीं सकती ।

क्या वह विश्व-जगत् की सृष्टि शारीरिक क्रिया के द्वारा करता है या अन्य किसी प्रकार की क्रिया द्वारा ?

ये दोनों ही बातें असम्भव हैं, क्योंकि बिना शरीर के कोई क्रिया भी सम्भव नहीं है । यदि आप मानते हैं कि वह सर्वत्र है तो मानते रहें । उससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि वह **सर्वस्रष्टा** हो सकता है ।

अब फिर मान लें (तर्कानुरोध से) कि—एक शरीररहित ईश्वर अपनी इच्छा और क्रिया से विश्व-जगत् की संरचना कर सकता है । उसने विश्व-जगत् की रचना क्या किसी व्यक्तिगत सनक के कारण प्रारम्भ की ? यदि हाँ, तो उस स्थिति में विश्व-जगत् में कोई प्राकृतिक नियम या व्यवस्था नहीं होनी चाहिए ? तब क्या उसने यह रचना मनुष्यों के नैतिक और अनैतिक कार्यों के आधार पर की ? यदि

हाँ, तो वह नैतिक व्यवस्था में बद्ध है और स्वयं स्वतन्त्र नहीं है। तो क्या उसने करुणा के कारण सृष्टि की है ? यदि हाँ तो फिर विश्व में केवल प्रसन्नता और अच्छाई होनी चाहिए और कुछ नहीं। यदि आप यह कहें कि मनुष्य जो दुःख भोगते हैं वह तो उनके पूर्व कर्मों के कारण है और सुख भी कर्मों के कारण है।

यदि पूर्व कर्मों–जो भाग्य या नियति के रूप में आपके द्वारा माने गए हैं–के कारण मनुष्य कुकर्म करने को प्रेरित होता है, तो उस नियति यानी अदृष्ट को ही ईश्वर की जगह सृष्टिकर्त्ता क्यों न मान लिया जाए ?

यदि ईश्वर ने खेल-खेल में सृष्टि बना दी तो वह शिशु-बालक हुआ, जिसने निरुद्देश्य यह कार्य किया। यदि उसने ऐसा इस उद्देश्य से किया है कि कुछ को दण्ड और कुछ को पुरस्कार मिल सके तो फिर वह पक्षपाती हुआ; कुछ के लिए, रागी और दूसरों के लिए द्वेषी।

यदि सृष्टि रचना स्वभाव ही है और उससे सृष्टि प्रगटी है तो फिर कर्त्ता मानने की आवश्यकता ही क्या है ? यही क्यों न मान लें कि सृष्टि स्वयं अपने स्वभाव

से प्रगटी है। यह भावना क्लिष्टकल्पना ही है कि एक ईश्वर जैसी किसी चीज ने औजारों, उपकरणों या सहायकों के बिना यह दुनिया रच दी। यह तो अनुभव-विरुद्ध है।

तर्क के लिए यदि मान लें कि ऐसा ईश्वर है तो आप जो विशेषण उसके लिए प्रयुक्त करते हैं, वे कभी संगत नहीं बैठते। आप कहते हैं कि वह अनादि अनन्त, नित्य है, किन्तु जब वह निःशरीर है तो बुद्धि और चेतना स्वरूप हुआ। उसका वह स्वरूप विश्व के विभिन्न प्रकार के पदार्थों की रचना के लिए विभिन्न रूपों में बदलता रहा होगा। यदि उसकी बुद्धि, चेतना या ज्ञान में कोई परिवर्तन नहीं होता तो सृष्टि और विनाश के इतने विभिन्न रूप क्यों है? सृष्टि और विनाश एक अपरिवर्तनीय बुद्धि और ज्ञान के परिणाम नहीं हो सकते फिर, ज्ञान का स्वभाव ही बदलना है, यदि हम उस ज्ञान से तात्पर्य लें जो मानवीय सन्दर्भों में प्रयुक्त होता है (और उसके अलावा अन्य कोई सन्दर्भ ज्ञान के ज्ञात ही नहीं हैं)।

आप कहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ है पर यह कैसे माना जाये कि उसे कोई ज्ञान भी हो सकता है क्योंकि उसके

कोई इन्द्रिय ही नहीं है तो फिर उसे प्रत्यक्ष कैसे होगा और बिना प्रत्यक्ष के वह कोई अनुमान भी नहीं कर सकेगा। यदि यह कहें कि ईश्वर को माने बिना विश्व की रचना का यह वैचित्र्य कैसे विख्यात या सिद्ध होगा तो यह भी सही नहीं है। आपादन द्वारा यह सिद्धि तब संगत मानी जा सकती है जब अन्य कोई परिकल्पना सम्भव ही न हो। यहाँ अन्य सम्भावनाएँ भी हो सकती हैं।

एक सर्वज्ञ ईश्वर के बिना भी एक नैतिक व्यवस्था अथवा कर्मसिद्धान्त के आधार पर सारी सृष्टि व्याख्यात की जा सकती है।

यदि आप एक ईश्वर मानते हैं तो ईश्वरों का एक समुदाय भी माना जा सकता है। यदि आप कहें कि बहुत से ईश्वर होने पर मतभेद और झगड़े हो जायेंगे तो यह उस कंजूस की कहानी–सी हो गई जो खर्च न करना चाहने के कारण अपने पुत्रों और पत्नी को छोड़कर वन-जंगल में साधु बन गया। जब चींटियाँ और मक्खियाँ तक समन्वय के साथ सहयोग कर सकती हैं तो अधिक ईश्वर होने पर यह मानना कि उनमें मतभेद हो जायेगा, यह सिद्ध करता है कि आप द्वारा बताये गये ईश्वर के

महान् गुणों के बावजूद उसका स्वभाव यदि कुटिलता और दुष्टता से सम्पृक्त नहीं तो कम-से-कम अविश्वसनीय अवश्य है। इस प्रकार किसी भी तरह आप ईश्वर की सिद्धि का प्रयत्न करें; वह विफल ही होगा। इससे तो अच्छा है कि ईश्वर की सत्ता ही न मानी जाए।

पूज्य कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित 'अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका' स्तवन में लिखित यह श्लोक विधिवत् अनुशीलनीय है। **"कर्त्तास्ति"** अर्थात् हे वीतराग ! जो अप्रामाणिक लोग 'विश्व-जगत् का कोई कर्त्ता है-(१) वह एक है (२) सर्वव्यापी है (३) स्वतन्त्र है और (४) नित्य है' इत्यादि दुराग्रह से परिपूर्ण सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं, उनका तू अनुशास्ता नहीं हो सकता।

प्रत्यक्ष इत्यादि प्रमाणों से जाने हुए स्थावर और जंगम रूप तीनों लोकों [स्वर्ग-मृत्यु-पाताल लोक] का अनिर्वचनीय स्वरूप कोई पुरुष विशेष सृष्टिकर्त्ता है, इसमें प्रमाण है कि–पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष इत्यादि पदार्थ किसी बुद्धिमान् कर्त्ता के बनाये हुए हैं क्योंकि ये कार्य हैं; जो कार्य होते हैं वे सब किसी बुद्धिमान् कर्त्ता के बनाये हुए होते हैं। जैसे–घट, पृथ्वी, पर्वत तथा वृक्ष इत्यादि भी

कार्य हैं, इसलिए ये भी बुद्धिमान् कर्त्ता के बनाये हुए होने चाहिए। व्यतिरेक रूप में आकाश इत्यादि कार्य नहीं है, इसलिए किसी बुद्धिमान् कर्त्ता के बनाये हुए भी नहीं हैं। जो कोई इन पदार्थों का बुद्धिमान् कर्त्ता है, वह भगवान ईश्वर ही है।

उक्त हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि अपने-अपने कारणों से उत्पन्न होने से और अवयवी होने से पृथ्वी पर्वत इत्यादि का कार्यत्व सभी वादियों ने स्वीकार किया है।

यह हेतु अनैकान्तिक (व्यभिचारी) अथवा विरुद्ध भी नहीं है, क्योंकि इसकी विपक्ष से अत्यन्त व्यावृत्ति है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि जिस हेतु की विपक्ष में भी अविरुद्ध वृत्ति हो, अर्थात् जो हेतु विपक्ष में भी चला जाये उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। जैसे घड़ा ठण्डा है, क्योंकि मूर्तिक है। यहाँ मूर्त्तित्व की व्याप्ति ठण्डा और गर्म दोनों के साथ है, अर्थात् मूर्त्तित्व हेतु विपक्ष गर्म में भी चला जाता है, इसलिये दूषित है? यहाँ कार्यत्व हेतु को विपक्ष अर्थात् आकाश इत्यादि से व्यावृत्ति है, इसलिए यह हेतु अनैकान्तिक नहीं है। इसलिए कार्यत्व हेतु विरुद्ध भी नहीं है। जिस हेतु का अविनाभाव सम्बन्ध साध्य से विरुद्ध के साथ निश्चित हो उसे हेत्वाभास कहते

हैं। जैसे शब्द परिवर्तनशील है, क्योंकि उत्पत्ति वाला है। यहाँ उत्पत्ति की व्याप्ति परिवर्तनशीलता के साथ है, जो साध्य से विरुद्ध है।

प्रस्तुत कार्यत्व हेतु अपने साध्य बुद्धिमत् कर्तृत्व के साथ अविनाभाव सम्बन्ध से रहता है, इसलिए विरुद्ध नहीं है। कार्यत्व हेतु कालात्ययापदिष्ट भी नहीं है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुमान और आगम से अबाधित, धर्म और धर्मी के सिद्ध हो जाने पर प्रतिपादित किया गया है–अर्थात् पहले प्रमाणसिद्ध धर्म-धर्मी का कथन करके बाद में हेतु का कथन किया गया है। यह हेतु प्रकरणसम भी नहीं है, क्योंकि यहाँ कोई बाधक प्रत्यनुमान नहीं है। ध्यातव्य है कि जहाँ साध्य के अभाव का साधक कोई दूसरा अनुमान मौजूद हो उसे प्रकरणसम कहते हैं। यहाँ कार्यत्व हेतु के प्रतिकूल बुद्धिमद् अकर्तृत्व धर्म को सिद्ध करने वाला कोई प्रत्यनुमान नहीं है।

ईश्वर पृथ्वी, पर्वत आदि का कर्त्ता नहीं है, क्योंकि वह अशरीरी है, मुक्तात्मा की तरह, यह प्रत्यनुमान उक्त प्रत्यनुमान कार्यत्व हेतु का बाधक है, इसलिए कार्यत्व हेतु प्रकरणसम हेत्वाभास से दूषित है। यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि 'ईश्वर पृथ्वी पर्वत आदि का कर्त्ता नहीं है'–

इस वाक्य में ईश्वररूप धर्मी प्रतीत है, अथवा अप्रतीत? यदि धर्मी अप्रतीत है तो हेतु आश्रयासिद्ध होगा अर्थात् जब धर्मी ही अप्रतीत है तब अशरीरत्व हेतु कहाँ रहेगा? यदि कहो कि उक्त अनुमान में ईश्वर प्रतीत है, तो जिस प्रमाण से ईश्वर प्रतीत है, उसी प्रमाण से यह क्यों नहीं मानते कि ईश्वर स्वयं उत्पन्न किये हुए शरीर को ही धारण करता है। अर्थात्–ईश्वर को प्रतीत (जाना हुआ) मानने से क्या ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ईश्वर ने अपना शरीर स्वयं बनाया है, और वह विश्व-जगत् को बनाने में समर्थ है। इसलिए ईश्वर को शरीररहित नहीं कह सकते। अतएव ईश्वर के कर्तृत्व में हमारा दिया हुआ कार्यत्व हेतु असिद्ध-विरुद्ध इत्यादि दोषों से रहित होने के कारण निर्दोष है। वह पुरुष विशेष एक अर्थात् अद्वितीय है, क्योंकि यदि बहुत से ईश्वरों को संसार का कर्त्ता स्वाकार किया जाए तो एक-दूसरे की इच्छा में विरोध उत्पन्न होने के कारण एक वस्तु के कारण एक वस्तु का अन्य रूप में निर्माण होने से संसार में असमञ्जस उत्पन्न हो जायेगा।

ईश्वर सर्वव्यापी (सर्वग) है। यदि ईश्वर को नियत प्रदेश में ही व्याप्त माना जाय तो अनियतस्थानों के तीनों

लोकों के समस्त पदार्थों की यथारीति उत्पत्ति सम्भव न होगी। जैसे कुम्भकार एक प्रदेश में रहकर नियत प्रदेश के घटादि पदार्थों को ही बना सकता है, वैसे ही ईश्वर भी नियत प्रदेश में रहकर अनियत प्रदेश के पदार्थों की रचना नहीं कर सकता।

अथवा ईश्वर सब पदार्थों का जानने वाला (सर्वज्ञ) है, क्योंकि कहा है कि मत्यर्थ धातु ज्ञानार्थक भी होती है। यदि ईश्वर को सर्वज्ञ न मानें तो यथायोग्य उपादान कारणों के, न जानने के कारण वह ईश्वर अनुरूप कार्यों की उत्पत्ति न कर सकेगा। ईश्वर स्वतन्त्र (स्ववश) है क्योंकि वह अपनी इच्छा से ही सम्पूर्ण प्राणियों को सुख-दुःख का अनुभव कराने में समर्थ है। कहा भी है–

"ईश्वर से प्रेरित जीव स्वर्ग और नरक में जाता है। ईश्वर की सहायता के बिना कोई अपने सुख-दुःख उत्पन्न करने में स्वतन्त्र नहीं है।"

ईश्वर को पराधीन परतन्त्र स्वीकार करने पर परमुखापेक्षी होने से, मुख्य कर्तृत्व को बाधा पहुँचेगी, फलस्वरूप उसका ईश्वरत्व नष्ट हो जायेगा।

ईश्वर अविनाशी, अनुत्पन्न और स्थिर रूप नित्य है। ईश्वर को अनित्य मानने में एक ईश्वर दूसरे ईश्वर से

उत्पन्न होगा। इसलिए वह कृतक-अपने स्वरूप की सिद्धि में दूसरे की अपेक्षा रखने वाला हो जायेगा तथा ईश्वर का जो कोई दूसरा कर्त्ता मानोगे, वह नित्य है या अनित्य ? यदि नित्य है तो एक ही ईश्वर को नित्य क्यों नहीं मान लेते ? यदि ईश्वर का कर्त्ता अनित्य है, तो उस अनित्य कर्त्ता का कोई दूसरा उत्पादक होना चाहिए। फिर वह कर्त्ता नित्य होगा या अनित्य ? इस प्रकार अनवस्था दोष उत्पन्न होगा।

'इमाकुहे वाक्ति विडम्बनाः' —इस प्रकार की कुत्सित आग्रहरूप विडम्बनाएँ विचाररहित होने के कारण तिरस्कार के योग्य हैं। अप्रामाणिक लोगों की ये विडम्बनाएँ अपने दोषों को छिपाने के लिए ही हैं। ऐसे लोगों के उपदेष्टा, हे वीतराग विभो ! आप नहीं हो सकते।

न्याय-वैशेषिकों की मान्यता को विडम्बना सिद्ध करने के लिए ही उक्त स्तुतिश्लोक में न्याय-वैशेषिकों द्वारा अभीष्ट ईश्वर के प्रत्येक विशेषण के साथ 'तत्' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार वक्ता लोग किसी निन्दनीय पुरुष को कहते हैं कि 'वह मूर्ख है, वह पापी है, वह दरिद्र है, इत्यादि' उसी प्रकार यहाँ भी ईश्वर के लिए

कहा गया है कि 'वह विश्व-जगत् का कर्त्ता है, वह एक है, वह नित्य है इत्यादि'। श्लोक में युष्मत् (त्वम्) शब्द के प्रयोग से 'परम दयालु-परम कृपालु' होने के कारण पक्षपात की भावना रहित **श्रीजिनेन्द्र-वीतराग भगवान** का अद्वितीय हितोपदेशकत्व ध्वनित होता है।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि भगवान सामान्यरूप से सम्पूर्ण प्राणियों को हितोपदेश करते हैं, किन्तु वह उपदेश पूर्वजन्म में उपार्जित किये हुए निकाचित (जिस कर्म की उदीरणा, संक्रमण, संकर्षण, उत्कर्षण और अपकर्षण रूप अवस्थाएँ नहीं हो सके, उसे **निकाचित कर्म** कहते हैं।) पापकर्मों से मलिन आत्मा वाले प्राणियों को सुखद नहीं होता क्योंकि, इस प्रकार के पापी जीव अपुनर्बन्धक (जो जीव तीव्र भावों से पाप नहीं करता तथा जिसकी मुक्ति अर्धपुद्गलपरावर्त्त में हो जाती है, उसे अपुनर्बन्धक कहते हैं। अर्थात्–जो जीव मिथ्यात्व को छोड़ने के लिए तत्पर और सम्यक्त्व की प्राप्ति के अभिमुख होता है, उसे अपुनर्बन्धक कहते हैं। इनके कृपणता, लोभ, याञ्चा, दीनता, मात्सर्य, भय, माया और मूर्खता इन भवानन्दी दोषों के नष्ट होने पर शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान औदार्य, दाक्षिण्य इत्यादि गुणों में वृद्धि

होती है। अपुनर्बन्धक के देव-गुरु इत्यादि की पूजन, सदाचार, तप और मुक्ति से अद्वेष रूप 'पूर्वसेवा' मुख्यरूप से होती है। अपुनर्बन्धक जीव शान्तचित्त और क्रोध इत्यादि से रहित होते हैं। तथा जिस तरह भोगी पुरुष अपनी स्त्री का चिन्तन करता है, उसी प्रकार वे सतत संसार के स्वभाव का विचार करते रहते हैं। कुटुम्ब इत्यादि में प्रवृत्ति करते रहने पर भी उसकी प्रवृत्तियाँ बन्ध का कारण नहीं होतीं। अपुनर्बन्धक वितर्कप्रधान होता है और इसके क्रमशः कर्म और आत्मा का वियोग होकर इसे मोक्ष प्राप्त होता है।) आदि जीवों से भिन्न हैं, इसलिए उपदेश के पात्र नहीं हैं।

बाण ने भी कादम्बरी में कहा है—"जिस प्रकार निर्मल स्फटिकमणि में चन्द्रमा की किरणों का प्रवेश होता है, उसी तरह निर्मल चित्त में उपदेश प्रवेश करता है तथा जैसे कानों में भरा निर्मल जल भी महान् पीड़ा को उत्पन्न करने वाला होता है, वैसे ही गुरुओं के वचन भी अभव्य जीव को क्लेश उत्पन्न करने वाले होते हैं।" अतएव वीतराग विभु दुराग्रही पुरुषों के उपदेष्टा नहीं हो सकते।

इस कथन से सर्वज्ञविभु की असमर्थता प्रगट नहीं होती क्योंकि सामान्य सर्पों से डसे हुए प्राणियों को जिलाने वाला विषवैद्य यदि कालसर्प से डसे हुए प्राणी को न जीवित रख सके तो यह वैद्य का दोष नहीं है। यह दोष कालसर्प से डसे हुए मनुष्य का ही है क्योंकि कालसर्प के विष पर मन्त्र तथा यन्त्रादिक भी प्रभाव नहीं डाल सकते। इसी प्रकार यदि सर्वज्ञविभु अभव्यों को उपदेशित न कर सकें तो यह दोष सर्वज्ञविभु का नहीं है। यह दोष अभव्यों का है, क्योंकि तीव्र कषाय से मलिन अभव्यों की आत्मा पर उपदेश का कुछ भी असर नहीं होता। सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने वाली सूर्य की किरणें यदि उल्लुओं के प्रकाश का कारण नहीं हो सके तो यह किरणों का दोष नहीं है।

तार्किकशिरोमणि पूज्य श्री सिद्धसेनसूरि दिवाकर ने भो कहा है कि—"हे लोकबन्धो ! आप सद्धर्मबीज बोने में सम्पूर्णपने दक्ष हैं, फिर भी आपका सदुपदेश बहुत से लोगों को लागू नहीं होता, इसमें कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि अन्धकार में फिरने वाले उल्लू आदि पक्षियों को सूर्य की किरणें भौंरों के परों के समान काली ही दिखाई पड़ती हैं।"

अथ कथमिव—

पृथ्वी आदि पदार्थ किसी बुद्धिमान् कर्त्ता के बनाये हुए हैं (कार्य होने से 'घटवत्'), यह अनुमान ठीक नहीं है क्योंकि इस अनुमान में व्याप्ति का ग्रहण नहीं होता। 'प्रमाण द्वारा व्याप्ति के सिद्ध होने पर ही साधन से साध्य का ज्ञान होता है' यह सर्ववादियों द्वारा अभिमत सिद्धान्त है। प्रश्न यह उठता है कि ईश्वर ने शरीर धारण करके विश्व-जगत् को बनाया अथवा अशरीरी होकर? यदि ईश्वर ने शरीर धारण करके विश्व-जगत् को बनाया है तो वह शरीर हम लोगों की तरह दृश्य है या पिशाच आदि की तरह अदृश्य? यदि वह शरीर हमारी तरह दृश्य है, तो इसमें प्रत्यक्ष से बाधा आती है। हमें ऐसा कोई दृश्य शरीरवाला ईश्वर दिखाई नहीं देता; जो घास, वृक्ष, इन्द्र-धनुष, बादल इत्यादि की सृष्टि करता हो। अतएव जहाँ-जहाँ कार्यत्व है वहाँ-वहाँ सशरीर कर्तृत्व है, यह व्याप्ति नहीं बनती। कार्यत्व हेतु यहाँ साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास है। जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष में रहता है, उसे साधारण अनैकान्तिक कहते हैं। जैसे—पर्वत वह्नि-अग्निवाला है, प्रमेय होने के कारण; यहाँ प्रमेयत्व हेतु अग्निरूप साध्य के धारक पर्वत के पक्ष में रहता है, महानस रूप सपक्ष में रहता है और पर्वत से भिन्न साध्य

के अभाव रूप जलाशय आदि विपक्ष में भी रहता है। अतः प्रमेयत्व हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

इसी प्रकार यहाँ भी कार्यत्व हेतु पृथ्वी आदि पक्ष में, सपक्ष में तथा ईश्वर के शरीर द्वारा नहीं बनाये हुए घास, वृक्ष आदि विपक्ष में भी कार्यत्व हेतु चला गया। अतः यह हेतु साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास होने से दोषपूर्ण है।

यदि आप अदृश्य ईश्वर शरीर से विश्व-सृष्टि मानते हैं तो ईश्वर-शरीर की अदृश्यता में कारण ईश्वर का माहात्म्य है या हमारा दुर्भाग्य ! प्रथम पक्ष विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि—ईश्वर के अदृश्य शरीर सिद्ध करने में कोई प्रमाण नहीं है तथा ईश्वर के माहात्म्य विशेष सिद्ध होने पर उसका अदृश्य शरीर सिद्ध हो और अदृश्य शरीर सिद्ध होने पर माहात्म्य विशेष सिद्ध हो, इस प्रकार इतरेतराश्रय (अन्योन्याश्रय) दोष भी आता है। यदि कहें कि हम लोगों के दुर्भाग्य से ईश्वर का शरीर दृष्टिगोचर नहीं होता तो यह भी ठीक नहीं जँचता क्योंकि वन्ध्यापुत्र की तरह ईश्वर का अभाव होने से उसका शरीर दिखाई नहीं देता, अथवा जिस प्रकार हमारे दुर्भाग्यवश पिशाच आदि का शरीर दिखाई नहीं देता, वैसे ही ईश्वर का शरीर भी अदृश्य है ?

इस प्रकार अनिश्चय की स्थिति बनी रहती है, तथा ईश्वर को अशरीर स्रष्टा मानने में दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक विषम हो जाते हैं क्योंकि घटादिक कार्य शरीर सहित कर्त्ता के बनाये देखे जाते हैं तो फिर आकाश की तरह अशरीर ईश्वर किस प्रकार कार्य करने में समर्थ हो सकता है! अर्थात्–'जगत् अशरीर ईश्वर का बनाया हुआ है, कार्य होने से घट की तरह इस अनुमान में घट दृष्टान्त और जगत् दार्ष्टान्तिक में समता नहीं है, क्योंकि घट सशरीरी का बनाया हुआ है। जिस प्रकार अशरीरी आकाश कोई कार्य नहीं कर सकता, उसी तरह अशरोरी ईश्वर भी कार्य करने में असमर्थ है। इस कारण सशरीर और अशरीर दोनों पक्षों में कार्यत्व हेतु की सकर्तृत्व साध्य के साथ व्याप्ति सिद्ध नहीं होती।

किञ्चेति–

आपके मत में कार्यत्व हेतु कालात्ययापदिष्ट भी है, क्योंकि जगत् रूप धर्मी (साध्य) के एकदेश इस काल में उत्पन्न वृक्ष, विद्युत्, मेघ किसी कर्त्ता के बनाये हुए नहीं देखे जाते हैं, अतः यहाँ प्रत्यक्ष से बाधित धर्मी के अनन्तर हेतु का कथन किया गया है।

अतएव यह हेतु दोषपूर्ण है। अतएव विश्व-जगत् का कोई कर्त्ता नहीं है। ईश्वर के जगत्-कर्तृत्व साधन

में एकत्व इत्यादि विशेषण दिये गये हैं, वे सब नपुंसक के प्रति स्त्रीरूप लावण्य-चर्चा के समान ही हैं।

आइये, तथापि कुछ विचार-विमर्श करते हैं-

तत्रैकत्व–एकत्व :

बहुत से ईश्वरों द्वारा विश्व-जगत्रूप एक कार्य विरचित होने की स्थिति में ईश्वरों में पारस्परिक वैमत्य होगा। यह कथन एकान्त सत्य नहीं है, क्योंकि सैकड़ों चींटियाँ एक ही बामी बनाती हैं, बहुत से कारीगर एक ही महल बनाते हैं, बहुत सी मधुमक्खियाँ एक ही शहद का छत्ता बनाती हैं, फिर भी वस्तुओं की एकरूपता में कोई विरोध नहीं आता।

यदि वादी कहे कि–बामी, प्रासाद आदि का कर्त्ता भी ईश्वर ही है तो इससे ईश्वर के प्रति आप लोगों की निरुपम श्रद्धा ही प्रकट होती है और इस तरह आपको कुम्भकार को घट और तन्तुकार को पट इत्यादि का कर्त्ता न मानकर ईश्वर को ही इनका भी कर्त्ता मानना चाहिए। यदि आप कहें कि प्रत्यक्ष दृष्ट को कैसे नकारा जाये तो चींटी और मधुमक्खी आदि को भी बामी, छत्ता आदि का कर्त्ता मानना पड़ेगा।

परस्पर मतिभेद की दृष्टि से ईश्वर एकत्व की कल्पना, भोजनादि के व्यय से त्रस्त कृपण पुरुष के अपने प्रिय पुत्र, स्त्री आदि को छोड़कर वनवासी हो जाने की तरह हास्यास्पद है।

सर्वगतत्व–

ईश्वर सर्वगत भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि ईश्वर का सर्वगतत्व शरीर की अपेक्षा से है अथवा ज्ञान की अपेक्षा से ? प्रथम पक्ष में ईश्वर का अपना शरीर ही तीनों लोकों में व्याप्त हो जायेगा फिर दूसरे बनाने योग्य (निर्मेय) पदार्थों के लिए कोई स्थान ही नहीं रहेगा।

यदि आप कहें कि ज्ञान की अपेक्षा ईश्वर को सर्वव्यापी मानें तो इसमें हमारे साध्य की सिद्धि है, क्योंकि हम (जैन) भी परमात्मा को निरतिशय ज्ञान की अपेक्षा से त्रिलोकव्यापी मानते हैं परन्तु ईश्वर को ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत मानने से आपके सिद्धान्त पक्ष में विरोध आता है। वेद में ईश्वर को शरीर की अपेक्षा से सर्वव्यापी कहा है।

श्रुति में–ईश्वर सर्वत्र नेत्रों वाला, मुँह वाला, हाथों वाला तथा पैरों वाला माना गया है। साथ ही वैशेषिक

दर्शनवादी ने सर्वव्यापक मानने में हेतु प्रदान किया है कि–यदि ईश्वर को नियतस्थानवर्त्ती माना जाये तो त्रिलोक में अनियत स्थानों के पदार्थों की यथावत् उपस्थिति नहीं हो सकेगी। यह प्रश्न समुदित होता है कि त्रैलोक्य की सृष्टि करने वाला ईश्वर साक्षात् शरीर की मदद से विश्व-जगत् की रचना करता है या संकल्प मात्र से? प्रथमपक्ष स्वीकार करने में पृथ्वी पर्वत आदि के निर्माण में अत्यन्त कालक्षेप की सम्भावना के कारण सुदीर्घकाल तक विश्व-रचना न हो सकेगी। यदि द्वितीयपक्ष मानें कि एक स्थान पर रहकर संकल्प मात्र से ईश्वर विश्वरचना करता है तो दोष प्रतीत नहीं होता क्योंकि सामान्य देव भी संकल्पमात्र से तत्-तत् कार्यों का सम्पादन करते हैं।

ईश्वर को शरीर की अपेक्षा सर्वव्यापी मानने से वह ईश्वर अशुचि पदार्थों के सम्पर्क से महान्धकार से व्याप्त नरक आदि में भी रहा करेगा और यह मानना आपको अभीष्ट नहीं है। यदि आप हमारे मत पर आक्षेप करते हुए कहें कि ज्ञान की अपेक्षा जिनेश्वर भगवान को भी तत्-तत् पदार्थानुभव से अनिष्टापत्ति दोनों को समान है तो यह कहना समीचीन नहीं होगा क्योंकि ज्ञानमात्र से

रसाम्वादन सम्भव नहीं। अप्राप्यकारी ज्ञान अपने स्थान में स्थित होकर ही ज्ञेय को जानता है, ज्ञेय के स्थान को प्राप्त कर नहीं। यदि ऐसा हो तो माला, चन्दन, स्त्री तथा मनोज्ञ पदार्थों के चिन्तन (ज्ञान) मात्र से ही तृप्ति होने लगे, किन्तु ऐसा नहीं होता।

हमने जो ज्ञान की अपेक्षा से ईश्वर के सर्वव्यापी होने से सहमति दर्शायी, उसका यही कारण है कि–सर्वज्ञ श्री जिनेन्द्र प्रभु के विषय में ज्ञान की अपेक्षा सर्वगतत्व जैन दार्शनिक भी स्वीकार करते हैं। किसी मनुष्य की बुद्धि शक्ति का अनुभव करके लोग कहते हैं कि इसकी बुद्धि सब शास्त्रों में प्रखर है। ठीक इसी प्रकार यहाँ भी हमने जिनेश्वर के ज्ञान की शक्ति का अनुभव करके जिनेश्वर भगवान को ज्ञान की अपेक्षा सर्वव्यापक कहा है। ज्ञान प्राप्यकारी नहीं है क्योंकि वह आत्मा का धर्म है। अतः ज्ञान आत्मा से बाहर (पृथक्) नहीं रह सकता। यदि ज्ञान आत्मा से बाहर निकलने की बात मानी जाए तो आत्मा के अचेतनत्व की आपत्ति उपस्थित हो जायेगी। वैशेषिकों ने जो सूर्य का दृष्टान्त दिया है कि सूर्य की किरणें गुणरूप होकर भी सूर्य से बाहर जाकर संसार को प्रकाशित करती हैं, उसी तरह ज्ञान आत्मा का गुण होकर

भी आत्मा से बाहर प्रमेय पदार्थों को जानता है। यह भी ठीक नहीं है क्योंकि किरणों का गुणत्व ही असिद्ध है क्योंकि किरणें तैजस् पुद्गल रूप हैं, अतः वे द्रव्य हैं। किरणों का प्रकाशात्मक स्वरूप कभी किरणों से पृथक् नहीं रहता।

१४४४ ग्रन्थों के रचयिता पूज्य श्रीमद् हरिभद्र सूरीश्वरजी महाराज श्री ने **'धर्मसंग्रहिणी'** नामक ग्रन्थ में कहा है कि–किरणें द्रव्य हैं, गुण नहीं हैं। किरणों का गुण प्रकाश है। यह प्रकाश रूप गुण द्रव्य को छोड़ कर अन्यत्र नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार ज्ञान आत्मा का गुण है। वह आत्मा से पृथक् नहीं होता ॥१॥

जिस देश में ज्ञेय पदार्थ स्थित हैं, उस प्रदेश में ज्ञान जाकर ज्ञेय को नहीं जानता किन्तु आत्मा में रहते हुए दूर देश में स्थित ज्ञेय को जानता है, आत्मा के ज्ञान में अचिन्त्य शक्ति है ॥२॥

जिस प्रकार चुम्बक पत्थर की शक्ति चुम्बक में ही रहकर दूर रखे हुए लोहे को अपनी ओर खींचती है, ठीक इसी प्रकार ज्ञान शक्ति आत्मा में ही रहकर लोक के अन्त तक रहने वाले पदार्थों को विधिवत् जानती है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

सर्वज्ञत्व–

वैशेषिकों के ईश्वर का सर्वज्ञत्व प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण से ईश्वर का सर्वज्ञत्व सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष इन्द्रिय एवं मन के संयोग से उत्पन्न होता है। वह अतीन्द्रिय ज्ञान को नहीं जान सकता। परोक्ष ज्ञान से भी ईश्वर के सर्वज्ञत्व की सिद्धि सम्भव नहीं, क्योंकि परोक्ष ज्ञान अनुमान या शब्द से सर्वज्ञत्व को जानता है। अनुमान से ईश्वर का सर्वज्ञत्व ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि लिंगी और लिंग (साध्य और हेतु) दोनों के सम्बन्ध के स्मरण पूर्वक ही अनुमान होता है। जैसे–पर्वत अग्निमान है, निरवच्छिन्न धूम के कारण। ईश्वर प्रसङ्ग से ईश्वर के व्याप्तिग्रह भी नहीं हो सकेगा।

यदि आप कहें कि सर्वज्ञत्व के बिना जगद्-वैचित्र्य संस्थापित नहीं होगा अतः अर्थापत्ति प्रमाण से ईश्वरसिद्धि सम्भव है तो भी यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि विश्व-जगत् की विचित्रता और सर्वज्ञता के भी व्याप्ति का अभाव है। विश्व-जगत् की विचित्रता ईश्वर की सर्वज्ञता के बिना अन्य प्रकार से घटित नहीं हो सकती, ऐसी बात नहीं है। जंगम (त्रस) और स्थावर के भेद से संसार में

जीव दो प्रकार के हैं। जंगम जीवों की विचित्रता स्वयं उपार्जित शुभाशुभ कर्मों के उदय से ही होती है और स्थावर जीवों की भी यही स्थिति है।

आगम प्रमाण (शाब्दप्रमाण) से भी ईश्वर की सिद्धि सम्भव नहीं, क्योंकि प्रश्न उठता है कि ईश्वर को सिद्ध करने वाला आगम ईश्वरकृत है या अन्यकृत? यदि ईश्वरकृत है तो महान् क्षति होगी, क्योंकि महापुरुष स्वयं अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करते। तथा ईश्वर का शास्त्रकर्तृत्व ही सिद्ध नहीं होता, क्योंकि–शास्त्र वर्णात्मक है। ये ताल्वादि क्रिया अभिघातजन्य हैं। शरीर के अभाव के कारण ईश्वर में इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। शरीर मानने पर पूर्ववत् दोष परम्परा रहेगी। यह आगम (वैदिक शास्त्र) का प्रणेता असर्वज्ञ है तो उसके वचनों पर दृढ़ता से कौन विश्वास करेगा। अतः सर्वप्रपञ्च परित्याग कर 'ईश्वर' में विश्वकर्तृत्व की प्रतिष्ठा का हठवाद छोड़ दीजिए। आप ईश्वर को सर्वज्ञरूप में स्वीकार करें, किन्तु उक्त दोषों को ध्यान में रखते हुए शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ ईश्वर के स्वरूप को विश्व-जगत् कर्तृत्व प्रसंग से जोड़ने के चक्कर में उसे कलुषित बनाने की व्यर्थ चेष्टा न करें। यह मेरा विनम्र अनुरोध है।

उपसंहार

इस विश्व-जगत् या सृष्टि-संसार का बनाने वाला न कोई ईश्वर-परमेश्वर है, न कोई प्रभु-परमात्मा है, न कोई देव-दानव है, तथा न कोई मनुष्य-तिर्यंच है एवं न कोई ब्रह्मा-विष्णु-महेश (महादेव) है।

यह विश्व भूतकाल में भी किसी प्राणी द्वारा बनाया हुआ नहीं है, वर्तमान काल में भी इसे कोई बनाने वाला नहीं है, तथा भविष्यकाल में भी कोई बनाने वाला नहीं होगा। इसलिए सर्वज्ञविभु भाषित **'जैनदर्शन'** के त्रिकालज्ञानी श्री तीर्थंकर भगवन्तों ने तथा श्रुतकेवली गणधर महर्षियों आदि महापुरुषों ने अपने पूज्य आगम-शास्त्रों में विश्व-कर्तृत्व सम्बन्धी जो तथ्य कहा है, वह सत्य, वास्तविक, त्रिकालाबाध्य यथार्थ स्वरूप है। यह आलम्बन लेकर मैंने जो इस **'विश्वकर्तृत्वमीमांसा'** ग्रन्थ का आलेखन किया है, उसमें मुझसे ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक किसी प्रकार की स्खलना-भूल हुई हो तो मैं मन-वचन-काया से **'मिच्छामि दुक्कडं'** देता हुआ विराम पाता हूँ और कहता हूँ कि **'विश्व-जगत्' अनादि अनंत** ही है।

शिवमस्तु सर्वजगतः,

पर-हित-निरताः भवन्तु भूतगणाः ।

दोषाः प्रयान्तु नाशं,

सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः ॥ २१ ॥

['बृहच्छान्ति' स्मरण-स्तोत्र में से]

अर्थ-सङ्कलना–

अखिल विश्व का कल्याण हो, प्राणी परोपकार में तत्पर बनें; व्याधि-दुःख-दौर्मनस्य आदि नष्ट हो और सर्वत्र मनुष्य सुख भोगने वाले हो ।

卐 जैनम् जयति शासनम् 卐

श्रीवीर संवत्–२५२२
श्रीविक्रम संवत्–२०५२
श्रीनेमि संवत्–४७
मागसर सुदी–११
शनिवार
[मौन एकादशी]
दिनांक
२-१२-१९९५
स्थल–
श्रीजीरावला तीर्थ (राज.)

– लेखक –

परमपूज्य शासनसम्राट् श्रीमद् विजय नेमि-लावण्य-दक्षसूरीश्वरजी महाराज सा. के सुप्रसिद्ध पट्टधर-शास्त्र-विशारद-साहित्यरत्न-कवि-भूषण **आचार्य श्रीमद् विजय सुशीलसूरि**

卐 श्रीनेमि-लावण्य-दक्ष-सुशील ग्रन्थमाला रत्न ९६ वाँ 卐

❀ जगत्कर्त्तृत्व-मीमांसा ❀

[सरल हिन्दी भाषानुवाद सहिता]

卐

—: कर्त्ता :—

शास्त्रविशारद - साहित्यरत्न - कविभूषण

परमपूज्य आचार्य श्रीमद् विजय सुशीलसूरिः

卐

卐 प्रकाशिका 卐

❀ श्री सुशील साहित्य-प्रकाशन समितिः ❀

।। 卐 ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः 卐 ऐं नमः ।।

।। सद्गुरुभ्यो नमः ।।

❀ जगत्कर्त्तृत्व-मीमांसा ❀

[सरल हिन्दी भाषानुवाद सहिता]

[मङ्गलाचरणम्]

जिनेन्द्रमीश्वरं नत्वा, सद्गुरुं जिनभारतीम् ।
जगत्कर्त्तृत्वमीमांसा, सत्येयं लिख्यते मया ।। १ ।।

卐 परमात्मा-लक्षणम् 卐

देवः, ईश्वरः, भगवान् इत्यादि नानानामसंकीर्त्तनैः स्तूयते स्मर्यते पूज्यते च परमात्मा। तस्य च किं तावल्लक्षणमिति विषये दोषरहिता, शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप-स्थितिरेव परमात्मनो लक्षणत्वेन संघटते। जगत्सु बहुषु दूषणेषु सत्सु राग-द्वेषौ विशेषतो संसारबन्धनकारकौ महाघातकौ पातकौ चेति नात्र केषामपि विदुषां विसंवादः। तयोः परिहारं कृत्वा यश्च कैवल्यमधिगतः स खलु परमात्मापदवाच्यतामर्हति। लोकतत्त्वनिर्णयनामकं ग्रन्थं

विरचयता श्रीहरिभद्रसूरीश्वरेण स्पष्टरूपेण प्रत्यपादि । यथा–

यस्य निखिलाश्च दोषाः, न सन्ति सर्वे गुणाश्च वर्तन्ते ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।

[आर्यावृत्तम्]

भावार्थः–यस्मिन् आत्मनि न खलु दोषसमूहस्य लेशोऽपि, सर्वेषां गुणानाञ्च समवायस्तिष्ठति एवं गुणविशिष्टो ब्रह्मा विष्णुः शिवो जिनो वेति परमात्मस्वरूपावच्छिन्नः स सर्वदा अस्माकं वन्दनीयः ।

न खलु दोषसमवाये सत्यपि तस्य परमात्मनः स्वरूपावस्थितिः कथमपि सम्भाविनीति वेद्यमाकूतम् । क्रोध-मान-माया-लोभस्वरूपैः कषायैः कलुषितः कथं तावत् परमात्मपदं सार्थक्यं स्यात् ?

स तु वीतरागः सर्वदोषपरित्यागी स्वरूपवेत्तेति परमात्मा । कलिकालसर्वज्ञेन श्रीहेमचन्द्राचार्येण महादेवस्तोत्रे प्रस्तुतप्रसङ्गे कथितम्–

भव-बीजाङ्कुर-जननाः, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।

अर्थात्—संसारबीजोत्पादकाः राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभादयो यस्य विनष्टाः स खलु ब्रह्मा विष्णुः शिवो जिनो वा सदैव वन्दनीयः ।

अयमाशयो यन् नामभेदेन नास्ति भेदः । सर्वदोष-रहितत्वमेव परमात्मनः स्वरूपं लक्षणं वेति । एवं खलु निखिलदोषराशिशून्यत्वे सति देवत्वं यत्र प्रतिष्ठितं तत्र वन्दन-पूजा-भजनादि-व्यवहारः सार्थक्यं भजते ।

ईश्वरे यदि रागद्वेषादयः स्वीक्रियन्ते तदा तु महती क्षतिः सम्भाविनी यतो हि एकस्य प्राणिनः कृते तस्य रागः अपरस्य च कृते द्वेषः इति कृत्वा साधारणमनुष्यव्यवहार-वदाचरिते किमर्थमीश्वरत्वेन तं विजानीमः ।

* ईश्वरस्वरूपविषये पशुसंवादकथा *

कस्मिश्चिद् वने सिंह-व्याघ्र-गजाश्व-वृषभ-गर्दभ-श्वानाज - शशक - जम्बूकादयः निवसन्ति स्म । ते च सम्भूय सदैव यस्मिन् कस्मिन्नपि विषये निर्णयं कुर्वन्ति स्म । एकदा तैस्सम्भूय एकत्र ईश्वररूप-विमर्शः प्रारब्धः ।

प्रथमं तावत् **केसरीसिंहः** वनसम्राट् **समुत्थाय** धीर-गम्भीरस्वरेण अवोचत् 'श्रूयतां तावत् सकलैरपि वन्यजीवैः

मदीयमीश्वरस्वरूपविषये मन्तव्यम् । भगवान् ईश्वरो वा सुन्दररुचिर-केशपाशसंवलितो ललितो महापराक्रमी चावश्यमेव भविष्यतीति ।

वनराजस्य केसरिणो वचनं निशम्य **व्याघ्रोऽपि** स्वासनादुत्थायावदत् । शृण्वन्तु भवन्तो मदीयं हार्दम् स खलु भगवान् नैव कदापि केसरिवदालस्यपरायणः सम्भवति । स तु सदैव स्फूर्त्तिमान् धीरो गम्भीरो महा-पराक्रमी पीतकृष्णादि चिह्न संवलितो ललितो भवेदिति । व्यर्थभूतायाः केशपाशराशेस्तत्र कावश्यकतेति विभावयन्तु तत्र भवन्तो भवन्तः ?

तदा गजराजः अब्रवीत् एतयोः सिंह-व्याघ्रयोर्वचन-माकर्ण्य परिहासः प्रतिपद्यते । एतौ केशवान् पीतश्या-मलो वेति कथयतः तत् स्वरूपं तत् तु मिथ्येति वचम्यहम् । यतो हि स्वयमेवाहमीश्वरस्वरूपमिव अस्मि । चित्र-विचित्रस्य जगतो निर्माता किं तावत् मत् स्वरूपमिव विशालकायो न भवेत् । मदीये मस्तके नास्ति केशराशिः न च शरीरे पीत-श्यामलौ वर्णाविति कथं तावत् तादृक् स्वरूपं संघटते परमात्मन इति । एतावताहं ब्रवीमि स परमात्मा अतीव विशालकायः शक्तिशाली धीर-गम्भीरः, सात्त्विकाहार - विहारकारी महच्छुण्डादण्डयुतो येन

चाभीष्टवस्तु जातं दूरादपि ग्रहणसमर्थः स्यात् तथा चान्यत् स्थले स्थापयितुं वा प्रभवेत् ।

सिंह-व्याघ्र-हस्तिवचनं निशम्य ह्रेषाध्वनिमकुर्वन् **अश्वः** झटित्युत्थाय अवदत्—स खलु भगवान् सकल चराचरसृष्टि-कर्त्ता, पालन-कर्त्ता, सृष्टि-सञ्चालकश्चास्ति । स तु त्वरितगतिकः स्कन्धे धूसरितकेशराशिवान् । एकस्मात् स्थानात् अपरं स्थानं त्वरिततमगत्या गन्तुं प्रभवेत् । यथा-तस्य वेगवत् स्वरूपांशो मयि दरीदृश्यते । इत्युक्त्वाश्वः उपाविशत् । तदनन्तरे ककुदमान् वृषभः समुत्थाय वक्तुमुपाचष्टे 'मत् पूर्वसम्भाषिणां केषामपि वचनमादरपदवीं नैव भजते ।

यतो हि चराचर-रक्षकस्य सृष्टिकर्त्तु-रीश्वरस्य केशपाशेन, पीतश्यामलवर्णाभ्यां शुण्डादण्डेन लिङ्गत्या वा किं प्रयोजनम् ? यः खलु परमात्मा विश्वम्भरः विश्वभारोद्वहनसमर्थः, स तु हृष्टः पुष्टः, ककुभानि वा सौम्यशरीरः स्यात् । यथा च मम शरीराकृतौ तस्य परमात्मनो भारोद्वहनसामर्थ्यं स्फुटीभूतम् ।

पूर्ववक्तृणां ईश्वरस्वरूप-प्रस्तावमभिश्रुत्य अतीवसरलः **गर्दभो** व्याचष्टे, एषा तु तादृशी वार्ता सञ्जाता यथा च **श्वान-शृगालयोः** मांसलिप्तास्थि संकर्षणे भवति ।

स्वनाम-कृताक्षेपमधिगत्य श्वान-शृगालौ उत्थाय सहैव तारस्वरेणावोचताम्—यदस्यां सभायां व्यक्तिगतः आक्षेपो नैव कर्त्तव्यः। यच्चापलपितं गर्दभेण तत् विषये क्षमा-याचना कर्त्तव्या। तत् वचनं स्वयमेव प्रतिग्राह्यं तेनैवेति।

गर्दभोऽवादीत् नैवाहं व्यक्तिगतमाक्षेपभावनया किमपि वच्मि किन्तु लोके प्रचलितेति कर्त्ता। अहन्तूदाहरणार्थमेव ब्रवीमि। नात्र आक्षेपगन्धोऽपि वास्तविकीयं स्थितिः। किं सम्मिलिते ऽस्थिशकलेन भवति तथैव भवतोरायासः। लघ्वीं वार्त्तां श्रुत्वैवोग्रता, धैर्यपरित्यागो नैवोपयुज्यते। अत एवाहं ब्रवीमि, ईश्वरस्तु महान् सहिष्णुः मत्सदृशदृढपृष्ठदेशीय एव स्यात्। स तु अतीव सहनशीलः, विश्वस्मिन् पापकर्तृणाम् पापानि सहते ? अन्यथा तु तस्य जीवनमपि न सम्भवेत्। भगवान् तु अन्यायं दृष्ट्वापि जीवति। अतोऽहं ब्रवीमि स तु अतीवसहिष्णुरेव-स्यादिति।

पूर्वोक्तं निशम्य **श्वानोऽवदत्** 'यथा दृष्टिः तथा सृष्टिरिति' सर्वमान्यः सिद्धान्तः, सत्यमेवैतत् अन्यथा सर्वे खलु वैचित्र्य-भावेन कथं वर्णयितुं शक्ताः भवेयुः। पृच्छाम्यहं तावत् भगवतः कथं केशावली स्यात् ? किमेतत् पराक्रम-चिह्नमिति ? केशावली तु अश्वगर्दभादीनामपि

भवत्येव। पीत-कृष्णौ कथमपेक्ष्येते ? न तयोः सार्थकता प्रतिभाति किञ्चित्। मुखाकृतिरपि शरीरावयवप्रमाणैरेव शोभते। अन्यच्च किमर्थश्चेतस्चेतश्च धावनमीश्वरस्य संघटते ? स तु स्वयमेव सर्वव्यापको विभुः। तस्य किं प्रयोजनं धावनरुपद्रवितुं प्राणायामिव ? का आवश्यकता तस्य हृष्टपुष्टशरीरस्य ककुदस्य चेति ? भगवान् यदि अतीव सहिष्णुः शीतलहृदयः विश्वं पश्यति। जगतो रक्षां कः कुर्यात् ? अत एवाहं ब्रवीमि ईश्वरोऽत्यल्पनिद्रावान्, जागृतिमयः, स्फूर्त्तिमान् एवास्ते तदैव विश्वकार्यं व्यवस्थापयितुं सम्भवतीति।

श्वानोक्तं निशम्य सत्त्वरमज उत्थाय वक्तुमारेभे-भगवान्, न सिंह-व्याघ्राविव क्रूरः हिंसको वा। हस्तिरिव नाभिमानी, नाश्व इव चपलः, न च वृषभ इव मन्दः, गर्दभ इव नासभ्यः, न च श्वान इव रात्रावपि जागरणशीलश्चिन्तातुरो वेति। किमप्यपरमाकूतमहमुद्घाटयामि। इति स्वमतप्रकाशनोत्सुकेऽजे सति सिंह-व्याघ्रौ गर्जनपुरस्सरमवोचताम्—

किमजोऽपि वक्तुमुत्सहते ? किमसावपि विचारपदवीमावहति मूर्खः। किमस्माभिर्जगति दुराचारः

कृतः ? । हस्तिरपि चीत्कारं कृत्वाऽवोचत्—मामभिमानवन्तमिति कथयितुं कथमयमजः प्रभवति । कोऽयं यदेवं वक्तुमुत्सहते ? अश्वोऽपि क्रोधावेशेन ह्रेषाध्वनिं कुर्वन्नवादीत्-कथमनेन लघुनाजेन चपलशब्दप्रयोगश्चाञ्चल्यार्थे कृतमुत किमप्यपरेण, व्याजबीजेनेति ? तस्मिन्नेव क्षणे वृषभोऽपि रोषगर्भितोऽवादीत्-मां मन्दं कथमेतेन दुस्साहसः कृतः ? तस्मिन् क्षणे सहिष्णु-स्वभावान्न गर्दभः क्रोधावेशं कृतवान् समताभावेन तेनाऽसभ्य इति । तस्य कथनं श्रुतम्, किन्तु न खलु प्रतिवादः कृतः सहनशीलत्वात् ।

पशुसभायाः वातावरणमतीवविक्रान्तं कलुषितं कलहायितमिति मत्वा शशक उत्थाय अब्रवीत्—प्रियबान्धवाः ! क्रोधेनावेशेनातिरुषा नात्र विचारो निर्णयो वा सम्भवतीश्वरस्वरूपस्य । गुणैकपक्षपातदृशा यदजोऽवादीत्—तत्तु सत्यमेव । निश्चप्रचत्वेन सिंह-व्याघ्रौ निर्दयतापूर्वकं निरपराधपशूनां वधं कुर्वन्ति, विदारयन्ति निर्ममतया तेषां शरीराणि, भक्षयन्ति चेति ।

हस्तिरपि शुण्डादण्डं भ्रामयन् अहंकारमत्त इव भ्रमति । किं नायमभिमानप्रकारः ? कशाघातेनाश्वस्य त्वरिता-

गतिः किं चाञ्चल्यमन्तरा सम्भवति ? वृषभस्य मतेर्विषये किं कस्यापि मतमजवचनं विरोद्धुं प्रभवति ।

अतएव वृषभस्य मतेर्मान्द्यमागत्य मनुष्या अपि बुद्धिहीनं वृषभ इति सम्ब्रुवन्ति । गर्दभेनासभ्यकथनस्य प्रतिकारो न कृतः, किन्तु सोऽपि सम्यग्तया वेत्तीतिकथमनेनैव मुक्तमिति ।

श्वानेन यत्कथितं सततजागरणशीलो भगवान्, इत्यपि कथं संघटते ? किमसौ भगवान् प्रमत्तो यदस्मिन् जागरणकर्मणि प्रवर्त्तेत ?

सकलसाररूपेणाहं ब्रवीमि–'विशालकायानां दर्शनं पापम्' । अतो भगवान् न खलु दीर्घकायोऽपितु सूक्ष्मस्वरूपान्, नासौ हिंसकः, नैव क्रूरः किन्तु सरलो निर्दोषः ।

शशको यदैवं कथयन्नेवासीत् तदैव जम्बूकोऽवदत्–मन्ये चैषा वार्त्ताऽनया संगोष्ठ्याद्य नैव समप्रहस्यते । सम्प्रति भोजनावसरः सञ्जातः । अतो विरम्य तावत् प्रस्थातव्यम् । अपरे समये ईश्वररूपं निर्णेष्याम इति शृगालस्येयं वार्त्ता सर्वैरैकमत्येन समादृता । पशुसभा विसर्जिता ।

* अद्वितीय एव ईश्वरः *

अनन्तज्ञानविज्ञानमयः, सच्चिदानन्दघनस्वरूपः, सर्वथाऽष्टादशदोषरहितो भगवान् जगतामद्वितीय एव– अलौकिक एव, अनुपम एव तथा आदर्श एवैव। ये च तं विश्व-सृष्टि-कर्त्तारं, पालकं संहारकं वेति समामनन्ति, तत्कार्यसम्पादनार्थमायुधवन्तमीश्वरं सम्भावयन्ति। नैतदुपयुज्यते। यतो हि शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूपो भगवान् कथं कर्दममये संसारचक्र-संचालने स्वात्मानं प्रदूषयेत्? स्त्रिभिस्सार्द्धं कथमसौ विलासं कुर्यात्? वीतरागत्वात्। प्राकृत पुरुष इव ईश्वरो भवेत् चेत् कथं विवेकी पुरुषः तस्य स्मरणं पूजनं भजनं वा कुर्यात्? जगतस्तन्त्रस्तु स्वतन्त्रः। नासौ प्रपञ्चकारी। स तु कर्मजालानि संशोध्यात्मानं पवित्रीकृत्य परमात्मपदवीम् अधिश्रितो जगतामाराध्यः पूज्यो वन्दनीयः। स तु अनन्त-ज्ञानानन्दमयो देवः।

अत्र खलु श्रीमद् गीतायाः पंक्तिरियमनुसन्धेया–

'न कर्त्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः।'

'नित्यं चिन्मयोऽनन्त-ज्ञानमयो वीतरागी।

स एव भगवान् ईश्वरो देवो वेति शम्॥'

卐 प्र...श...स्तिः 卐

नेत्राकाशशरव्योम-

युग्मवर्षे सुत्रैकमे ।

माघे शुक्ले च पञ्चम्यां,

तिथौ बुधे शुभे दिने ॥ १ ॥

श्रीवरमाणतीर्थे हि,

श्रीवीरजिनमन्दिरे ।

सीमन्धरस्य चैत्येऽपि,

सुप्रतिष्ठा-महोत्सवे ॥ २ ॥

नेमि - लावण्य - दक्षाणां,

गुरूणां कृपया मया ।

जगत्कर्तृत्वमीमांसा,

कृता सुशीलसूरिणा ॥ ३ ॥

जगत्कर्तृत्व-जिज्ञासा-

दत्तचित्तानुवर्त्तिनाम् ।

बोधनार्थं च मीमांसा,

वीतराग - मतानुगा ॥ ४ ॥

आगमतत्त्व - संशुद्धया,

बुद्धया वै कल्पिता कृतिः ।

यावच्च रविचन्द्रौ वै,

भातु तावदियं कृतिः ॥ ५ ॥ □

।। 卐 ॐ ह्रीँ अर्हं नमः 卐 ऐं नमः ।।

।। सद्गुरुभ्यो नमः ।।

❁ जगत्कर्त्तृत्व-मीमांसा ❁

[सरल हिन्दी भाषानुवाद]

卐 परमात्मलक्षण 卐

परमात्मा ईश्वर, देव, भगवान इत्यादि अनेक नामों से स्तुत, स्मृत एवं पूजित किया जाता है। उस परमात्मा का क्या लक्षण है? इस विषय में दोषरहित शुद्धज्ञान-मयी स्वरूपस्थिति ही परमात्मा के लक्षण के रूप में सम्यग् प्रतीत होती है।

संसार में नाना प्रकार के दोषों के विद्यमान रहते हुए भी विशेष राग और द्वेष संसार-बन्ध के कारण हैं। ये महाघातक हैं तथा जीवात्मा को पतन के महागर्त्त में डालने वाले हैं। इस प्रसङ्ग में किसी भी मतावलम्बी विद्वान् का कोई वैमत्य नहीं है। 'राग-द्वेष का परिहार करके जो कैवल्य अर्थात् पंचम केवलज्ञान को प्राप्त कर

शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप हो, वही 'परमात्मा' पद वाच्य हो सकता है।'

लोकतत्त्व निर्णय नामक ग्रन्थ में चौदह सौ चवालीस ग्रन्थों के कर्त्ता याकिनीमहत्तरा धर्मसूनु श्रीमद् हरिभद्र सूरीश्वरजी महाराजश्री ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है–

"यस्य निखिलाश्च दोषाः, न सन्ति गुणाश्च विद्यन्ते ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।"

अर्थ–जिस आत्मा में दोषसमूह का लेशमात्र भी नहीं है तथा समस्त गुणों का समवाय है। इस प्रकार गुण-विशिष्ट चाहे ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा जिन कोई भी हों उन्हें मेरा नमस्कार है; क्योंकि वे ही परमात्म-स्वरूप हैं।

दोष समवायों के रहते हुए परमात्मा रूप में स्थिति कदापि सम्भव नहीं है। इस रहस्य को विधिवत् जानना चाहिए। भला, क्रोध-मान-माया-लोभ कषायों से कलुषित आत्मा के रहते परमात्मा पद की सार्थकता कैसे हो सकती है? वह परमात्मा तो वीतराग, समस्त दोष परित्यागी तथा आत्मस्वरूपवेत्ता है।

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराजश्री ने भी महादेव-स्तोत्र में उक्त सन्दर्भ में कहा है कि–

"भवबीजाङ्कुर-जनना:, रागाद्या: क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।"

अर्थात्–संसारबन्ध के बीजों (कारणों) को उत्पन्न करने वाले राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि जिसके समाप्त हो चुके हों, ऐसे दोषरहित परमात्मा चाहे ब्रह्मा, विष्णु, शिव या जिन हो, उन्हें मेरा सादर नमन ।

ईश्वर में यदि राग-द्वेष स्वीकार किये जायें तो महान् क्षति की सम्भावना होगी, क्योंकि एक प्राणी के लिए राग तथा दूसरे के लिए द्वेष करके, सामान्य मनुष्य की तरह आचार करने वाले को हम क्यों भला ईश्वर के रूप में पहचानें ?

✻ ईश्वर-स्वरूप के विषय में पशु-संवाद कथा ✻

किसी वन-जंगल में सिंह, बाघ, हाथी, घोड़ा, बैल, गधा, कुत्ता, बकरा, खरगोश, गीदड़ आदि रहते थे । वे

एकत्र हो किसी-न-किसी विषय पर विचार-विमर्श करते थे।

एक बार उन्होंने मिलकर ईश्वर के स्वरूप पर विचार-विमर्श करना शुरू किया। सर्वप्रथम वनसम्राट् सिंह उठकर धीर गम्भीर स्वर में बोला—पहले समस्त वन-अरण्य जीव ईश्वर के स्वरूप-विषयक मेरा मन्तव्य सुनें।

"जिसे भगवान या ईश्वर कहा जाता है, वह अवश्य ही सुन्दर केशावली युक्त, मनोहर एवं महापराक्रमी होगा।"

वनराज केसरीसिंह के उक्त वचन सुनकर, अपने आसन से उठकर व्याघ्र (बाघ) ने कहा, "मेरे हृदय की बात सुनो, वह भगवान केसरीसिंह की तरह आलसी नहीं अपितु स्फूर्त्तिमान्, धीर, गम्भीर, महापराक्रमी एवं पीले तथा काले रङ्ग के चिह्नों से सुशोभित होगा। व्यर्थ की केशावली की उसे क्या आवश्यकता हो सकती है, आप ही विचार करें।"

सिंह और व्याघ्र दोनों के वचन सुनकर पर्वत की भाँति विशालकाय **गजराज (हाथी)** खड़ा होकर बोला, 'आप सभी ईश्वर स्वरूप की रहस्यात्मकता मुझसे सुनें। इन सिंह-व्याघ्र की उक्ति सुनकर मुझे हँसी आती है। ये दोनों क्रमशः कहते हैं कि—ईश्वर केसरीवत् केशवान तथा व्याघ्रवत् पीत-कृष्णचिह्नाङ्कित होगा। यह बात सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि मैं स्वयं ईश्वर के विशाल स्वरूप का नमूना हूँ। चित्र-विचित्र जगत् के निर्माता का क्या मेरे स्वरूप की भाँति विशालकाय स्वरूप नहीं होना चाहिए। मेरे मस्तक पर केशराशि नहीं है, न बदन पर पीले तथा काले रङ्ग के मिश्रित चिह्न; तो भला मुझ से भी विशाल उस ईश्वर के सिंह-व्याघ्र द्वारा कथित उक्त गुण कैसे सम्भव हैं? अतः मैं कहता हूँ, वह परमात्मा अतीव विशालकाय, परमशक्तिशाली, धीर-गम्भीर, सात्त्विक आहार-विहारकारी, महान् शुण्डादण्डवान (सूंडवाला) होगा, जिससे वह दूर से भी वस्तुओं को ग्रहण करने तथा इधर से उधर व्यवस्थित करने में सक्षम हो सके।

सिंह, व्याघ्र एवं हाथी के वचनों को सुनकर हिनहिनाते हुए, जल्दी से खड़े होकर **अश्व (घोड़े)** ने कहा, "वह भगवान समस्त चल एवं अचल जगत् का

सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं सृष्टि-संचालक है। वह तेज गतिमान, कन्धे पर धूसरित केशराशिवान अवश्य होगा। एक स्थान से दूसरे स्थान पर तीव्रतमगति से जाने में वह समर्थ है। उसकी तीव्रगति का यत्किञ्चित् स्वरूपांश मेरी गति में परिलक्षित होता है।" ऐसा कहकर अश्व-घोड़ा बैठ गया।

तत्पश्चात् ककुमान् (स्कन्ध पर बड़े डीलवाला थुंबी) बैल खड़ा होकर कहने लगा, "पूर्व वक्ताओं ने जो मन्तव्य ईश्वर के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये, उनमें किसी का मत आदर योग्य नहीं है, क्योंकि चराचर-रक्षक, सृष्टिकर्त्ता का केसरीवत् केशराशि से, व्याघ्रवत् पीले-काले चिह्नों से, हाथी के समान सूंड से, अश्वकी तरह तेज गति से भला क्या प्रयोजन हो सकता है? परमात्मा विश्वभरण-पोषण-कर्त्ता, समस्त विश्व के भार का संवहन करने वाला हो, वह तो हृष्ट-पुष्ट, ककुमान (थुम्बीवाला) सौम्याकृति अवश्य होगा। जैसे मेरे शरीर में उस की भारोद्वहन शक्ति एवं ककुद (थुम्बी) स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

पूर्व वक्ताओं के ईश्वर स्वरूप सम्बन्धी प्रस्तावों को सुनकर अतीव सरल गधा बोला, "यह तो वही बात हुई

जैसे कुत्ते और गीदड़ को यदि मांसलिप्त हड्डी मिली तो कुत्ता गाँव की ओर लेकर भागना चाहता है, गीदड़ जंगल की ओर।" अपने-अपने नाम ग्रहण पूर्वक आक्षेप होता सुनकर कुत्ते तथा गीदड़ ने उच्च स्वर में विरोध किया और कहा, 'इस सभा में व्यक्तिगत किसी पर आक्षेप नहीं होना चाहिए। जो गधे ने अभी-अभी प्रलाप किया है, अपशब्द कहे हैं, वह उसके बारे में क्षमा-याचना करे, अपने कर्कश वचनों को वापस ले।'

गधा बोला, "मैंने कोई व्यक्तिगत आक्षेप के रूप में उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। क्या हड्डी का टुकड़ा मिलने पर आप दोनों का प्रयास ऐसा नहीं होता जैसा कि लोकोक्ति द्वारा मैंने कहा है। छोटी सी बात सुनकर उग्रतापूर्वक धैर्यवृत्ति का त्याग करना समीचीन नहीं होता है। अतः मैं कहता हूँ–ईश्वर तो महान् सहनशील तथा मजबूत पीठवाला ही हो सकता है। वह मुझ से भी अधिक सहनशील होगा, क्योंकि वह सम्पूर्ण विश्व के अत्याचार एवं पापकर्मों को सहन करता है। यदि ऐसा न हो तो उसका जीवन ही संकटग्रस्त हो जाए। भगवान

तो अन्याय को देखकर महसूस करके भी जीवित रहता है। अतः मैं कहता हूँ, वह सहिष्णु ही होगा।"

पूर्वोक्त सभी कथनों को सुनकर कुत्ता बोला—'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' यह सर्वमान्य सिद्धान्त है और सत्य भी यही है। यदि ऐसा न हो तो सभी विचित्र भावना से भावित होकर वर्णन करने में समर्थ कैसे होते? मैं आपसे पूछता हूँ कि भगवान को केशावली क्यों होनी चाहिए? क्या यही पराक्रम की निशानी है? केशावली तो अश्व, गर्दभ आदि के भी होती ही है। पीले तथा काले रंग की धारियों की परमात्मा को क्या आवश्यकता? इनकी सार्थकता प्रतीत नहीं होती। मुखाकृति भी शरीर के प्रमाण के अनुसार सुशोभित होती है। ईश्वर का इधर-उधर दौड़ना-भागना भी कहाँ सार्थक प्रतीत होता है? वह तो सर्वव्यापक है। क्या आवश्यकता है, उसे द्रविड़ प्राणायामवत् व्यर्थ प्रयास की? भगवान यदि अतीव सहिष्णु, सरल हृदय होकर विश्व को देखता है तो भला विश्व की रक्षा कौन करेगा? इसलिए मैं कहता हूँ कि "ईश्वर अल्प निद्रावान, जागृतिमय, स्फूर्त्तिमान ही है,

तभी विश्व की व्यवस्था के कार्य करने में सक्षम होता है।"

कुत्ते की उक्त बात सुनकर बकरे ने यथाशीघ्र उठकर कहना प्रारम्भ किया, "भगवान सिंह-व्याघ्र की तरह से असमोक्ष्यकारी (बिना सोचे कार्य करने वाला) हिंसक, क्रूर नहीं है। हाथी की तरह अभिमानी भी नहीं। अश्व की तरह चपल (चंचल) भी नहीं, बैल की तरह मूर्ख भी नहीं, श्वान-कुत्ते की तरह जानने वाला चिन्तातुर भी नहीं है। मैं इस सन्दर्भ में अन्य रहस्य उद्घाटित कर रहा हूँ।"

इस प्रकार अपने अभिमत को प्रकाशित करने हेतु जैसे ही बकरा उद्यत हुआ तभी शेर एवं बाघ गर्जना करते हुए (गुर्राते हुए) बोले, "बकरे की ये मजाल! यह मूर्ख भी क्या कोई वैचारिक स्थिति रखता है? हमने संसार में क्या अत्याचार किया है?" हाथी भी चिंघाड़ कर बोला, "मुझे अभिमानी कहने का इस बकरे ने साहस कैसे किया? यह कौन होता है जो इस प्रकार बोलने का दुस्साहस करे?"

अश्व–घोड़े ने भी क्रोध के आवेश में कहा–"चपल शब्द का प्रयोग मेरे लिए चञ्चल अर्थ में किया है ? या अन्य कोई व्यंग्योक्ति से ?"

उसी समय **बैल** भी गुस्से से भरकर बोला, "मुझे मूर्ख कहने का दुस्साहस इस बकरे ने कैसे किया ?" उस समय मात्र गधा आवेशित नहीं हुआ। उसने सहिष्णु स्वभाव वश बकरे के द्वारा 'असभ्य' कटूक्ति को सहन किया। किसी तरह का विरोध नहीं किया।

इस पशुसभा का वातावरण अत्यधिक विक्रान्त कलुषित, कलहपूर्ण मानते हुए **खरगोश** ने उठकर कहा कि–

"प्रिय बन्धुओ ! क्रोध, रोष एवं आवेश में यहाँ ईश्वरस्वरूप का निर्णय सम्भव नहीं। गुणपक्ष का अवलम्बन लेकर जो कुछ बकरे ने कहा वह तो सत्य ही है। निश्चितरूप से शेर एवं बाघ निर्दयतापूर्वक निरपराध पशुओं का वध करते हैं, तथा निर्ममतापूर्वक

उनके शरीर को विदीर्ण करके खाते हैं। हाथी भी सूंड को इधर-उधर घुमाते हुए अहंकार-अभिमान में मत्त हुआ घूमता ही है। क्या उसका आचरण-अभिमान की कोटि में नहीं आता है? चाबुक लगते ही अश्व-घोड़े की तेज रफ्तार क्या चञ्चलता के बिना सम्भव है? बैल की बुद्धि के सन्दर्भ में क्या कोई भी बकरे की बात का विरोध करने को तैयार है? मनुष्य भी बुद्धिहीन व्यक्ति को 'बैल है' ऐसा कहते हैं। गधे ने बकरे के द्वारा 'असभ्य' कहे जाने का विरोध नहीं किया, किन्तु वह भी मन में भली भाँति जानता है कि इसने ऐसा क्यों कहा है?

कुत्ते ने जो कहा है कि भगवान जागरणशील है तो भला क्या भगवान प्रमत्त है कि वह जागरण कर्म में प्रवृत्त हो?

सारांशरूप में मैं कहता हूँ कि, 'विशाल शरीर वालों का दर्शन भी खोटा है।' अतः भगवान 'दीर्घकाय वाले नहीं', अपितु सूक्ष्म शरीर वाले हैं। वे हिंसक नहीं हैं, क्रूर भी नहीं हैं, किन्तु सरल एवं निर्दोष हैं।

खरगोश जब यह कह रहा था, तभी गीदड़, बोला "मुझे लगता है कि यह वार्त्ता आज की इस संगोष्ठी में सम्पन्न नहीं हो पायेगी। अब भोजन का समय भी हो चुका है। इसलिए आज की वार्त्ता को यहीं विराम देकर प्रस्थान करते हैं। फिर किसी दिन ईश्वर स्वरूप का निर्णय सर्वसम्मति से करेंगे।

सभी ने गीदड़ की बात सादर मान ली। पशु सभा विसर्जित हुई।

* ईश्वर अद्वितीय आदर्श स्वरूप है *

अनन्तज्ञान-विज्ञानमय, सच्चिदानन्दरूप, सर्वदा दोषमुक्त भगवान/ईश्वर अलौकिक आदर्श ही है। जो उसे सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता मानते हैं, संसार के उन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उसे अस्त्र-शस्त्र-धारी मानते हैं; वह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूपी भगवान क्यों भला कीचड़ से (दोषों से) भरे संसार का संचालन कर अपने आपको

दूषित बनाये ? स्त्रियों के साथ वह क्यों विलास करे ? वह तो वीतराग है।

यदि प्राकृत पुरुष की तरह से ईश्वर भी हो तो विवेकी पुरुष उसका स्मरण, पूजन, भजन क्यों करें ?

विश्व-जगत् तन्त्र तो स्वतन्त्र है। वह ईश्वर किसी भी प्रकार का प्रपञ्च नहीं करता है। वह कर्मजालों से मुक्त पवित्रात्मा होकर परमात्मा के महनीय, वन्दनीय पद पर प्रतिष्ठित होकर विश्व-जगत् का आराध्य, पूजनीय एवं वन्दनीय है। वह तो अनन्त ज्ञानानन्दमय देव है। इस सन्दर्भ में श्रीमद् भगवद् गीता की यह पंक्ति भी अनुसन्धेय है–

'न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः।

अर्थात्–'ईश्वर न संसार का कर्त्ता है, न संसार के कर्मों का सर्जक है।'

नित्य चैतन्यमय, अनन्तज्ञानवान् वीतराग भगवान/देव ही ईश्वर है।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

श्रीवीर संवत्–२५२२

विक्रम सं. २०५२

नेमि सं. ४७

महासुद–१३

शुक्रवार

[श्रीवरमाण तीर्थ में अंजनशलाका-प्रतिष्ठा का शुभ दिन]

卐

– लेखक –

परमपूज्य शासनसम्राट् श्रीमद्विजय नेमि-लावण्य-दक्ष सूरीश्वर जी म.सा. के सुप्रसिद्ध पट्टधर - शास्त्र-विशारद, साहित्यरत्न, कवि-भूषण **आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरि।**

– स्थल –

श्री वरमाण तीर्थ जैन उपाश्रय

卐

卐 ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः 卐

जय अष्टापद 卐 नमो तित्थस्स 卐 धन्य तीर्थ

।। चउविसंपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयन्तु ।।

श्रद्धा एवं समर्पण का आगार....
शांत-प्रशांत पुण्य भूमि में तीर्थनिर्माण....
एक स्वर्णिम इतिहास को सृजन करने वाला....
तन-मन के संताप को प्रशांत करने वाला....
आपका अपना प्यारा प्रभावी अभिनव तीर्थ ..
आपकी श्रद्धा-भक्ति-समर्पण का अनूठा केन्द्र....

भारतभूषण राजस्थानशणगार गोड़वाड़गौरव

श्री अष्टापद जैन तीर्थ

सुशील विहार

वरकाणा रोड, मु. रानी स्टेशन, जिला-पाली (राज.)

✆ ०२९३४-२२७१५

★ **सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपने ढंग का प्रथम प्रयास** ★

।। अभिनव तीर्थ-निर्माण योजना ।।

प्रेरक : परमपूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी महाराज साहब एवं पूज्य पंन्यासप्रवर श्री जिनोत्तम विजयजी गणिवर्य महाराज साहब

卐 तीर्थ - महिमा 卐

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव-आदिनाथ भगवान के निर्वाण-स्थल पर **चक्रवर्ती महाराज श्री भरत** ने वर्द्धकी रत्न द्वारा **"सिंहनिषद्या"** नामक मणिमय जिनप्रासाद बनवाया। तीन कोस ऊँचे और एक योजन विस्तृत इस प्रासाद में स्वर्ग मण्डप जैसे मण्डप, उसके भीतर पीठिका, देवच्छन्दिका तथा वेदिका का भी निर्माण करवाया। पीठिका में कमलासन पर आसीन आठ प्रातिहार्य सहित, लांछनयुक्त, शरीर के वर्ण वाली **चौबीस तीर्थंकरों** की मणियों तथा रत्नों की प्रतिमायें विराजमान कीं।

इस चैत्य में महाराज भरत ने अपने पूवजों, भाइयों, बहिनों तथा विनम्र भाव से भक्ति प्रदर्शित करते हुए स्वयं की प्रतिमा भी बनवाई।

इस जिनालय के चारों ओर **चैत्यवृक्ष-कल्पवृक्ष-सरोवर-कूप-बावड़ियाँ** और मठ बनवाये। तीर्थरक्षा के लिए दण्डरत्न द्वारा एक-एक योजन की दूरी पर आठ पेढ़ियाँ बनवाईं, जिससे यह **प्रथम तीर्थ अष्टापद** के नाम से विख्यात हुआ।

लोक के इस प्रथम जिनालय में भगवान श्री आदिनाथ एवं शेष २३ तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा करवाकर भक्तिपूर्वक

महाराज भरत ने आराधना, अर्चना और वन्दना कर अनन्त सुख प्राप्त किया।

श्री सगरचक्रवर्ती महाराज के ६० हजार पुत्रों द्वारा **तीर्थरक्षा, रावण-मन्दोदरी द्वारा अद्वितीय जिनभक्ति, श्री गौतम स्वामीजी द्वारा १५०३ तापसों को** प्रतिबोध आदि अनेक प्रसंगों का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है।

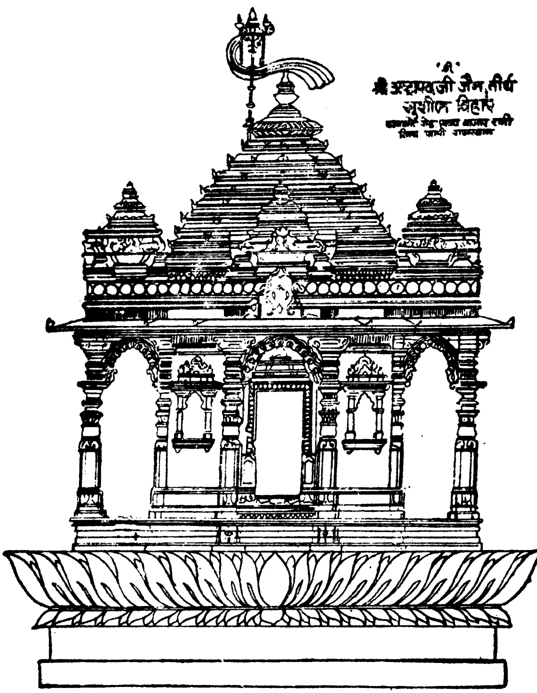

पावन भूमि ! महान् आयोजन !! अपूर्व अवसर !!!

जिनशासनप्रेमी श्री ....

सादर जयजिनेन्द्रपूर्वक प्रणाम। श्री अष्टापद तीर्थ का निर्माण श्री रानी स्टेशन पर **श्रीराणकपुर-गोड़वाड़ पंचतीर्थ** की मुख्य सड़क पर सुकड़ी नदी के किनारे उत्तर दिशा में होने जा रहा है।

यह पावन भूमि **श्री वरकाणा रोड** पर स्थित करीब ५१ हजार वर्ग फुट में स्थित है। आराधना-साधना योग्य बहुत ही सुन्दर भूमि है। यह जमीन तीर्थनिर्माण हेतु **श्री अचलचन्दजी हजारीमलजी तलेसरा** ने गाँव को प्रदान की थी।

शासनसम्राट् प. पू. **आचार्यमहाराजाधिराज श्रीमद्विजय नेमि-लावण्य-दक्ष सूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टधर राजस्थानदीपक, प्रतिष्ठाशिरोमणि, प. पू. **आचार्यभगवन्त श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म.सा.** एवं **पूज्य पंन्यास प्रवर श्री जिनोत्तम विजयजी गणिवर्य म.** ने श्री चौमुख जी भगवान की प्रतिष्ठा के समय श्रीसंघ को **श्री अष्टापद तीर्थ-निर्माण** हेतु शुभ प्रेरणा दी थी। पूज्य उपकारी गुरुदेवों की महान् प्रेरणा व मार्गदर्शन से श्रीसंघ ने **श्री अष्टापद जैन तीर्थ, सुशील विहार** का नव निर्माण करवाने का

मंगलकारी निर्णय किया है एवं श्रीसंघ द्वारा गठित **समिति** द्वारा कार्य प्रारम्भ हो गया है।

विलुप्त **श्री अष्टापद तीर्थ** को मूर्त्त रूप देने के लिए समस्त भारत के गौरव रूप श्री गोड़वाड़ पंचतीर्थ यात्रा की सड़क पर यह भव्य निर्माण होने जा रहा है।

शास्त्रों में उपलब्ध वर्णन के आधार पर २४ तीर्थंकरों के वर्ण एवं आकार के अनुरूप प्रतिमाएँ इस अभिनव तीर्थ का मुख्य आकर्षण होंगी।

हमें पूर्ण विश्वास है कि आप इस तीर्थ की वन्दना कर जहाँ मंत्र-मुग्ध हो जायेंगे, वहीं **श्री अष्टापद तीर्थ वन्दना** का पुण्य लाभ भी संचित कर पायेंगे।

।। जिनशासनदेव की महान् कृपा ।।

हमारा पुरुषार्थ आपका सहयोग

卐

श्रद्धा एवं समर्पण का आगार

एक स्वर्णिम इतिहास का सृजन करने वाला।
तन-मन के सन्ताप को प्रशान्त करने वाला।।

(१) श्री अष्टापद जैन तीर्थ–"जिनमन्दिर"

परमोपकारी परमतारक देवाधिदेव श्री तीर्थंकर परमात्मा के अनन्त उपकारों के संस्मरण और कृतज्ञ भावना से प्रेरित होकर शक्तिसम्पन्न श्रेष्ठिवर्य को **"जिनमन्दिर निर्माण"**, प्रभु प्रतिमा जी भरवाने का तथा प्रतिष्ठा का लाभ अवश्य लेना चाहिए।

निर्माण-कार्य हेतु अनेक **श्रीसंघों का सहयोग** प्राप्त हुआ है।

इस जिनमन्दिर में २४ तीर्थंकर परमात्मा की वर्ण के अनुसार भव्य जिनप्रतिमायें स्थापित होंगी।

जिनमन्दिर का निर्माण ४५०० वर्ग फुट भूमि पर होगा, इस अष्टकोणीय जिनमन्दिर के चारों ओर **गुलाबी पत्थर के कमल के फूलों** की भव्य रचना होगी, जो अत्यधिक रमणीय व नयनाभिराम होगी।

इस जिनमन्दिर का **खनन-मुहूर्त्त** प. पू. **आचार्य भगवंत श्रीमद्विजय सुशील सूरीश्वर जी म.सा.** एवं पू. **पंन्यासप्रवर श्री जिनोत्तम विजय जी गणिवर्य म.** की शुभ-निश्रा में वैशाख शुक्ल-१०, शुक्रवार २० मई, १९९४ के

शुभदिन हुआ है एवं **शिलान्यास मुहूर्त्त** श्रावण शुक्ल-३, बुधवार १० अगस्त, १९९४ के शुभ दिन पूज्य गुरुदेवश्री की पावन निश्रा में सुसम्पन्न हुआ है। निर्माण कार्य प्रगति पर है।

श्री अष्टापद जैन तीर्थ मन्दिर के आगे के भाग में **पद्म-कमल** के आकार में **सुन्दर देहरियों** का निर्माण होगा, जिनमें अधिष्ठायक देव **श्री माणिभद्र जी, श्री नाकोड़ा भैरव जी, श्री भोमिया जी, श्री पद्मावती देवी, श्री महा-लक्ष्मी देवी,** व **मा. सरस्वती देवी** की भव्य प्रतिमाएँ स्थापित होंगी।

(२) श्री वर्द्धमान जिन पट्टपरम्परा देव-गुरु मन्दिर

वर्तमान शासनाधिपति चरम तीर्थंकर श्रमण भगवान **श्री महावीर परमात्मा** के पञ्चम गणधर श्री सुधर्मास्वामी जी से लेकर आज पर्यन्त जिनशासनप्रभावक महापुरुषों से युक्त **श्री वीर पट्टपरम्परा** के सुन्दर पट्ट लगाये जायेंगे, इस परिसर में कुल ११ प्रतिमाजी विराजमान की जायेंगी।

❀ श्रमण भगवान **श्री महावीर स्वामी जी भगवान** (२७ इंच)

❀ दायें तरफ **श्री सीमन्धर स्वामी जी** (विहरमान जिनेश्वर) (२३ इंच)

❋ बायें तरफ **श्री पद्मनाभ स्वामी** (भावी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर) (२३ इंच)

❋ अनन्तलब्धिनिधान **श्री गौतम स्वामीजी म.** (२१ इंच)

❋ पञ्चम गणधर **श्री सुधर्मास्वामीजी म.** (२१ इंच)

❋ कलिकालसर्वज्ञ **पू. आ. श्री हेमचन्द्र सूरि जी म.** (२१ इंच)

❋ तपागच्छ संस्थापक **पू. आ. श्री जगच्चन्द्र सूरि जी म.** (२१ इंच)

❋ अकबरप्रतिबोधक **पू. आ. श्री हीर सूरि जी म.** (२१ इंच)

❋ शासनसम्राट् **पू. आ. श्री नेमि सूरि जी म.** (२१ इंच)

❋ साहित्यसम्राट् **पू. आ. श्री लावण्य सूरि जी म.** (२१ इंच)

❋ संयमसम्राट् **पू. आ. श्री दक्ष सूरि जी म.** (२१ इंच) इस **देव-गुरु मन्दिर** का निर्माण ६०० वर्ग फुट भूमि पर होगा।

इस मन्दिर का नव-निर्माण सुशील-सन्देश हिन्दी मासिक पत्र के मानद सम्पादक—**पूज्य पिताजी श्री विनयचन्द्र जी सुराणा एवं पूजनीया मातुश्री श्रीमती पार्वती बाई सुराणा की पावन स्मृति में तथा उनके आत्मश्रेयार्थ**

उनके पुत्र श्री नैनमल सुराणा धर्मपत्नी श्रीमती गवरी बाई, पौत्र महेन्द्र सुराणा - धर्मपत्नी श्रीमती सुमित्रा देवी, कैलाश सुराणा - धर्मपत्नी श्रीमती प्रवीना देवी, सुशील सुराणा - धर्मपत्नी श्रीमती ललिता देवी, सतीश सुराणा धर्मपत्नी श्रीमती रजनी देवी, यशवन्त सुराणा-धर्मपत्नी श्रीमती पूर्णिमा देवी, प्रपौत्र—गौरव, दर्शन, प्रशान्त, चिराग एवं समस्त सुराणा परिवार निवासी—सिरोही की तरफ से भव्य रूप से होगा।

(३) श्री नवग्रह शांति जिनमन्दिर

निर्माता— **श्री जोयला नगर जैन संघ,**
मु. जोयला (राज.)

श्री अष्टापद जैन तीर्थ, सुशील विहार की विशाल योजना के अन्तर्गत **श्री नवग्रहों की शांति-साधना** हेतु जिन-जिन श्री जिनेश्वर भगवान की आराधना-उपासना पूर्वाचार्यों ने प्राचीन स्तोत्रों में बताई है। तद् अनुसार नूतन **श्री नवग्रह शांति जिनमन्दिर** का निर्माण होगा।

इसमें **६ देहरियों** में ग्रहों के जाप के अनुसार निर्दिष्ट क्रमश: श्री जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमायें स्थापित होंगी और साथ में उसी देहरी पर ग्रहों के चित्र-मंत्र-यंत्र आदि पट्टरूप में उत्कीर्ण होंगे।

यह अष्टकोणीय प्रासाद बनेगा।

ग्रह		जिनप्रतिमा
(१)	सूर्य	**श्री पद्मप्रभुस्वामी जी** (२७ इंच)
(२)	चन्द्र	**श्री चन्द्रप्रभुस्वामी जी** (२७ इंच)
(३)	मंगल	**श्री वासुपूज्यस्वामी जी** (२७ इंच)
(४)	बुध	**श्री शांतिनाथ जी भगवान** (२७ इंच)
(५)	गुरु	**श्री ऋषभदेवजी भगवान** (२७ इंच)
(६)	शुक्र	**श्री सुविधिनाथ जी** (२७ इंच)
(७)	शनि	**श्री मुनिसुव्रत स्वामी जी** (२७ इंच)
(८)	राहु	**श्री नेमिनाथजी** (२७ इंच)
(९)	केतु	**श्री पार्श्वनाथ जी** (२७ इंच)

इसी जिनमन्दिर में **श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ** (७१ इंच) **व श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ** (७१ इंच) की **खड़ी काउसग्गस्थ** प्रतिमायें स्थापित होंगी।

इस मन्दिर की संरचना अद्वितीय व नयनाभिराम होगी।

महातपस्वी **पू. मुनि श्री रूपसागरजी म.सा.** के अग्नि संस्कार स्थल पर **देहरी व पगलिया जी** की स्थापना होगी।

आचार्य श्री लावण्यसूरि जी
जैन आराधना भवन

साहित्यसम्राट् प. पू. आचार्यदेवेश **श्रीमद् विजय लावण्यसूरीश्वर जी म.सा.** की पावन स्मृति में बन रहे **आराधना भवन** में गुरु भगवन्तों का विश्राम होगा, यहाँ शान्त साधनामय वातावरण है जिससे अनेक तीर्थयात्रियों को गुरुवन्दन एवं प्रवचन-श्रवण का लाभ होगा।

इसी आराधना भवन के साथ **श्री दक्ष स्वाध्याय कक्ष, श्री सुशील साधनाकक्ष** आदि का निर्माण हुआ है।

आचार्य श्री सुशील सूरि जी जैन ज्ञानमन्दिर

- इस ज्ञानमन्दिर का निर्माण परम पूज्य साधु-साध्वी जी म.सा. तथा जिज्ञासु श्रावक-श्राविकाओं की साहित्य-साधना के लिए होगा।
- यहाँ लभ्य-अलभ्य मुद्रित पत्रों, पुस्तकों का विशिष्ट संग्रह होगा।
- आगम-न्याय-दर्शन-योग-व्याकरण, इतिहास आदि विषयों से सम्बन्धित हस्तलिखित एवं मुद्रित प्राचीन व नवीन ग्रन्थों का अद्भुत संग्रह सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित किया जायेगा।

जैन परम्परा के अनुरूप जैन इतिहास के संदर्भ में गीतार्थ, मिश्रित शोध अध्ययन संशोधन हेतु यथासंभव

सामग्री व सुविधाओं को उपलब्ध करवाकर उसे प्रोत्साहित करना तथा सरल व सफल बनाना इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है।

पू. साध्वी श्री भाग्यलता श्रीजी जैन आराधना भवन

श्री **अष्टापद जैन तीर्थ – सुशील विहार** की विशाल योजना के अन्तर्गत **प. पू. आचार्यदेव श्रीमद्विजय अरिहन्त-सिद्ध सूरीश्वर जी म.सा.** की आज्ञानुवर्तिनी **पू. साध्वी श्री सुशील भक्ति - ललितप्रभा-स्नेहलता श्री जी म.सा.** की शिष्या **पू. साध्वी जी श्री भव्यगुणा श्रीजी म.सा., पू. साध्वी जी श्री दीव्यप्रज्ञा श्रीजी म.सा. (पू. माताजी महाराज)** तथा **पू. साध्वीजी श्री शीलगुणा श्रीजी म.सा.** आदि एवं उनकी शिष्या-प्रशिष्याओं के सदुपदेश एवं मंगल प्रेरणा से पू. साध्वीजी **श्री दीव्यप्रज्ञा श्रीजी म.सा.** तथा **पू. साध्वीजी श्री शीलगुणा श्रीजी म.सा.** के चल रही श्री वर्धमान तप की १००वीं ओली की आराधना निमित्त श्राविका - आराधना भवन (उपाश्रय) का भव्य निर्माण हुआ है।

श्री अष्टापद जैनतीर्थ, सुशील विहार, रानी के निर्माण में पूज्य साध्वी जी महाराज की मंगल प्रेरणा-सदुपदेश रहा है।

पूज्य साध्वी जी महाराज की प्रेरणा से इस तीर्थ में अनेक भव्य योजनाएँ निर्माणाधीन हैं।

श्री अष्टापद जैन तीर्थ, सुशील विहार, रानी जैन देवस्थान पेढ़ी

- धर्मशाला
- यात्री विश्रान्तिगृह (४० ब्लोक)
- श्री वर्धमान तप आयम्बिल खाता भवन
- अतिथिगृह

आदि का निर्माण कार्य सम्पन्न हो गया है।

- श्री अष्टापद जैन तीर्थ, सुशील विहार प्रवेश द्वार
- श्री भोजनशाला भवन
- श्री शान्ति उपवन
- वारिगृह (प्याऊ)
- विशाल धर्मशाला

आदि निर्माण कार्य प्रगति पर हैं।

तीर्थ निर्माण के द्वितीय चरण में–

- श्री शान्तिधाम-वृद्धाश्रम
- श्री सार्धमिक भक्ति सेवा फंड

आदि विविध शुभ कार्य करने का आयोजन है।

हमारे अंतर की बात...

आइये.... सब साथ मिलकर

अभिनव तीर्थ-निर्माण करें

श्री अष्टापद तीर्थ-निर्माण के आयोजन की संक्षिप्त रूपरेखा आपके सामने है।

आप भी मानते होंगे कि वर्तमान काल में इस विलुप्त तीर्थ के नव-निर्माण की आवश्यकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

भारतवर्ष में अपने ढंग का यह प्रथम भव्य प्रयास है, जो सकल संघों के सहयोग से ही पूर्ण होगा।

सुकृत में लाभ लेने की अनेक योजनाएँ हैं।

पुण्यशाली महानुभावों से सादर निवेदन है कि—इस महान् आयोजन में उदार हृदय से तन-मन-धन से सहयोग प्रदान कर पुण्यानुबन्धी पुण्योपार्जन का लाभ अर्जित करें।

इस कार्य हेतु इच्छुक भाग्यशाली **परम पूज्य श्री सुशील गुरुदेवश्री** एवं **तीर्थ निर्माण समिति** से सम्पर्क कर पुण्य लाभ लेवें।

卐 जय जिनेन्द्र 卐

श्री अष्टापद तीर्थ की स्तुति

जहाँ रत्नमय सममान चौबीस, बिम्ब सोहे प्रभु का ,
हुआ मोक्ष कल्याणक तहाँ, पुत्र नाभि-नरेन्द्र का ।
जिन नाम बँधा रावरणे, गौतम तरया यात्रा कर ;
उस तीर्थ अष्टापद गिरि को, वंदिये भक्तिपूर्ण ।। १ ।।

श्री अष्टापद तीर्थ का चैत्यवन्दन

तीर्थ अष्टापदगिरि नमो, सोहे जगभर आज ;
विश्वे महिमा मोटो तेहनो, वंदे सुर-नर राज ।। १ ।।

एह गिरिवर ऊपरे, मोक्षकल्याणक जाणो ;
आ अवसर्पिणीना प्रभु, ऋषभदेवनु मानो ।। २ ।।

भावथी भरत चक्रीए, भरावेल ए तीर्थे मोहे ;
रत्नमय बिंबो जिनना, चौबीसे सुन्दर सोहे ।। ३ ।।

राणी मन्दोदरी सहित ए, संगीत करतां स्नेहे ;
तीर्थंकर नाम कर्मने, बाँध्यु रावणे त्यांहे ।। ४ ।।

निज लब्धिए जे आवीने, जात्रा करे शुभ भावे ;
वीर विभु कहे गौतम ! आ भवे ते मोक्षे जावे ।। ५ ।।

आव्या सूर्यांशु आलंबने, स्व लब्धिथी ए गिरि ए ।
स्तव्या सर्व जिनने रची, जग चिन्तामणि थी ए ।। ६ ।।

नेमि-लावण्यसूरिराजना, पाठक **दक्षगणीश** ;
तस **पंन्यास सुशीलगणि,** स्तवे सदा ए गिरीश ।। ७ ।।

श्री अष्टापद तीर्थ का स्तवन

(नदी किनारे बैठ के आओ .. ए रागमां)

प्रभुभक्ति में एकतान होवे, रावण राणी जिन ध्यावे ;
राणी मन्दोदरी नृत्य करीने, पग पल-पल ठमकावे ।
।। प्रभु० १ ।।

त्रिक योगे इम भक्ति करतां, तांत वीणा तुट जावे ;
निज करथी सांधी निज नसने, रावण वीणा चलावे ।
।। प्रभु० २ ।।

द्रव्य भाव भक्ति जिनवर जी की, खंडित तीहां नवी थावे ;
तीर्थंकर पद रावण बाँधी, मनवांछित फल पावे ।
।। प्रभु० ३ ।।

तस सम जे जीव जिनवर आगे, भक्ति भाव शुभ भावे ;
तव जिन जिणंद भक्ति नौका से, मुक्ति तीरे जट जावे ।
।। प्रभु० ४ ।।

तपगच्छनायक **नेमिसूरीश्वर,** अष्टापद प्रभु ध्यावे ;
लावण्य-दक्ष-सुशील सेवक, सर्व जिन गुण गावे ।। प्रभु० ५ ।।

अष्टापद तीरथ की महिमा, जग में अपरम्पारा रे....

रचयिता **कनकराज पालरेचा 'मयूर'**, रानी

(**तर्ज** : नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे ... मदर इन्डिया)

अष्टापद तीरथ की महिमा, जग में अपरम्पारा रे
आदीश्वर निर्वाण हुए, जहाँ अष्टापद कहलाया रे
अष्टापद ......

तीन कोस ऊँचे पर्वत पर एक योजन **विस्तार** में....एक
प्रथम चौबीसी की प्रतिमा भराई
मणिरत्नों के मन्दिर में... मणि
चैत्य वृक्ष, कल्पवृक्ष, सरोवर, मठ, कूप, बावड़ी बनाई रे
अष्टापद तीरथ ...।। १ ।।

सगर चक्री के पुत्र साठ हजार, तीर्थरक्षा में लीन बने .. तीर्थ
भक्ति कर रावण राजा ने गोत्र तीर्थंकर बँधाया रे . गोत्र
गुरु गौतम ने पन्द्रह सौ तीन तापस को
शुद्ध मन से प्रतिबोध दिया। अष्टापद तीरथ... ।। २ ।।

सरोवर तट पर **रानी नगर** में,

अष्टापद तीरथ बने... अष्टापद

स्वर्ग सिधारे **रूपसागर जी** छह अट्ठम की तपस्या में...

गुरु **सुशील सूरीश्वर जी** ने, भावना अपनी बताई रे . छठ

अष्टापद तीरथ ।। ३ ।।

आचार्यश्री और **पंन्यासप्रवर** के उपदेशों को माना रे ...उप

रानी श्री **जैनसंघ** ने मिलकर योजना सुन्दर बनाई रे

भक्ति अष्टापद की करके, मुक्तिपद को प्राप्त करो

अष्टापद तीरथ ।। ४ ।।

श्री अष्टापद तीर्थ गरबा-गीत

रचयिता—**नैनमल विनयचन्द्रजी सुराणा**

(**तर्ज** : मारा दादा ने दरबारे ढोल वागे छे)

श्री अष्टापद तीरथ की महिमा न्यारी है ।

न्यारी है, कितनी प्यारी है ।। श्री अष्टापद....

यह अदृश्य तीरथ अलबेला, लगता था देवों का मेला ।

कोस बत्तोस की ऊँचाई, शोभा भारी है ।। श्री अष्टापद ...

निर्वाण समय पर आदीश्वर, पर्वत पर पहुँचे जगदीश्वर ।

माघ कृष्णा त्रयोदशी मुक्ति-दिन सुखकारी है ।।

श्री अष्टापद ...

सन्देश सुना जब भरतेश्वर, जा पहुँचे वे गिरिवर ऊपर।
'सिंहनिषद्या' चैत्य बनाया, अति बलिहारी है।।
श्री अष्टापद....

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर में,
दो, चार, आठ, दस परिकर में।
पधराये जिन चौबीस, मूरत प्यारी है।। श्री अष्टापद....

चक्रवर्ती सगर के पुत्र चढ़े, वन्दन कर हर्षित हुए बड़े।
सुकृत को सराहा खूब, जो हितकारी है।। श्री अष्टापद...

पद-यात्रा कर गौतम-स्वामी, जा पहुँचे अष्टापद नामी।
ग्रन्थों में है उल्लेख जो अघहारी है।। श्री अष्टापद .

जो अष्टापद तीरथ स्थापे, कलुषों, कर्मों को नित काटे।
अब 'नैन' नमे कर-जोड़, उर में धारी है।। श्री अष्टापद

卐 जैनं जयति शासनम् 卐

श्री अष्टापद तीर्थ आरती

□ कनकराज पालरेचा 'मयूर', रानी

चौबीस जिनेश्वर आरती कीजे,
मनवांछित फल शिवसुख लीजे ।। १ ।।

चौबीस जिनेश्वर मूरति भराई,
भरत महाराजे अष्टापद जी ।। २ ।।

गुरु गौतम की महिमा न्यारी,
अनन्त लब्धि के गुरु भंडारी ।। ३ ।।

जो जन नित उठ गौतम ध्यावे,
रोग-शोक नहीं कभी सतावे ।। ४ ।।

रावण नृपने भक्ति करके,
गोत्र तीर्थंकर यहाँ बाँधा रे ।। ५ ।।

सहज सरल और शुद्ध भाव से,
भक्ति करे जो मुक्ति पावे ।। ६ ।।

तीरथ तिरने का स्थल रे,
आरती गावे 'मयूर' भाव से ।। ७ ।।

卐 प्रकाशक 卐

श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति

— उद्देश्य —

सम्यग्ज्ञान का प्रचार प्रसार

ॐ नमो नाणस्स श्रीं

卐

卐 सुकृत के सहयोगी 卐

समाजरत्न-परम गुरुभक्त-श्रेष्ठिवर्य

श्री मनोजकुमार बाबुलालजी हरण

सिरोही (राज.)

की प्रेरणा से—

श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ

गांधी नगर - बैंगलोर

की तरफ से प्रकाशन हेतु

सहयोग प्राप्त हुआ है।